❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ३ | गौराब्द ४७१, मास—दामोदर ९, वार—कारणोदशायी | संख्या ५

वृहस्पतिवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०१४, १७ अक्टूबर १९५७

श्रीस्वयम्भगवत्त्वाष्टकम्

[श्रील-विश्वनाथ-चक्रवर्त्ति-ठक्कुर-विरचितम्]

स्व-जन्मन्यैश्वर्यं बलमिह बधे दैत्यवितते यशः पार्थ-त्राणे यदुपुरि महासम्पदमथात् ।
परं ज्ञानं जिष्णौ मुसलमनु वैराग्यमनु यो-भगैः षड्भिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ १ ॥

चतुर्बाहुत्वं यः स्वजनि समये यो मृदशने जगत्कोटीं कुक्ष्यन्तर परिमितत्वं स्ववपुषः ।
दधिस्फोटे ब्रह्मण्यतनुत परान्ततनुतां महैश्वर्यैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥ २ ॥

बलं बक्यां दन्तच्छदनवरयोः केशिनि नृगे नृपे बाह्योरङ्घ्रेः फणिनि वपुषः कंस-मरुतोः ।
गिरित्रे दैत्येष्वप्यतनुत निजास्त्रस्य यदतो-महौजोभिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥३॥

असंख्याता गोप्या व्रजभुवि महिष्यो यदुपुरे सुताः प्रद्युम्नाद्याः सुरतरु-सुधर्मादि च धनम् ।
बहिर्द्वारि ब्रह्माद्यपि बलिवहं स्तौति यदतः श्रियां पूरैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥३॥

यतो दत्ते मुक्तिं रिपुवितते यन्नरजनि-र्विजेता रुद्रादेरपि नतजनाधीन इति यत् ।
सभायां द्रौपद्या वरकृदतिपूज्यो नृपमखे यशोभिस्तत् पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥४॥

न्यधाद्गीतारत्नं त्रिजगदतुलं यत्प्रियसखे परंतत्त्वं प्रेम्नोद्धव-परमभक्ते च निगमम् ।
निजप्राणप्रेष्ठास्वपि रसभरं गोपकुलजा-स्वतो ज्ञानैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥६॥
कृतागस्कं व्याधं सतनुमपि वैकुण्ठमनयन्-ममत्वस्यैकाग्रानपि परिजनान् हन्त विजहौ ।
यदप्येते श्रुत्या ध्रुवतनुतयोक्तास्तदपि हा स्ववैराग्यैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥७॥
अजत्वं जन्मित्वं रतिररतितेहाररहितता सलीलत्वं व्याप्तिः परिमितिरहन्तामम्तयोः ।
पदे त्यागात्यागावुभयमपि नित्यं सदुररी-करोतीशः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥८॥
समुद्यत् सन्देहज्वरशतहरं भेषजवरं जनो यः सेवेत प्रथित-भगवत्त्वाष्टकमिदम् ।
तदैश्वर्यस्वादैः स्वधियमतिवेलं सरसयन् लभेतासौ तस्य प्रियपरिजनानुग्यपदवीम् ॥९॥

अनुवाद—

जिन्होंने अपने प्राकट्यके समय श्रीवसुदेव-देवकीके सम्मुख अपना ऐश्वर्य धारण किया, दैत्यवृन्दका बध करते समय बलका प्रकाश किया, पाण्डवोंकी रक्षाके अवसर पर निर्मल कीर्त्तिका विस्तार किया, यादवोंकी राजधानी द्वारिकामें अतुल वैभवको स्वीकार किया, सखा अर्जुनको उपदेश देते समय श्रीमद्भगवद्गीताके रूपमें सर्वश्रेष्ठ ज्ञानको प्रकट किया और अन्तमें लौहमय मुसलके व्याजसे यदुकुलका संहार करते समय वैराग्यका आदर्श उपस्थित किया, वे उक्त छहों भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण भगवान् नन्दनन्दन सबका आनन्दवर्द्धन करें ॥१॥

इतना ही नहीं, जिन्होंने अपने प्राकट्यके समय चतुर्भुज रूप ग्रहण किया, मृद्भक्षणके अवसर पर करोड़ों ब्रह्माण्ड अपने मुखमें प्रकट किये, दधिभाण्ड फोड़ देनेपर दयावश माताके हाथों बँधकर असीम होने पर भी अपने शरीरको उदरके परिमाणका करके दिखा दिया तथा ब्रह्माजीको छकानेके लिये अनन्त परात्पर स्वरूप धारण किये, वे महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीनन्दकिशोर सबको आनन्दित करें ॥२॥

जिन्होंने पूतनाबधके समय अपने श्रेष्ठ ओठोंका बल, केशी दैत्यको मारते तथा राजा नृगको गिरगिटके रूपमें कुँएसे बाहर निकालते समय बाहुबल, कालियनागका दर्प चूर्ण करनेके लिये चरणोंका बल, महाबली कंस एवं बबंडरके रूपमें प्रकट होने वाले तृणावर्त दैत्यका संहार करते समय शरीरका गुरुतारूप बल और बाणासुरके साथ युद्ध करते समय उक्त असुरके पक्षमें युद्ध करनेके लिये भगवान शंकरको मोहित करनेके लिये तथा दैत्योंका बध करते समय अस्त्रबल प्रकट किया, वे महान् बलशाली भगवान् नन्दनन्दन हमें सदा आनन्दित करते रहें ॥३॥

व्रजमें रासलीलके समय जिन्होंने असंख्य गोपियोंके साथ क्रीड़ा की, यदुपुरी द्वारिकामें सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विहार किया, प्रद्युम्न आदि लक्षाधिक पुत्र उत्पन्न किये तथा पारिजात एवं सुधर्मा सभा आदिके रूपमें अतुल वैभव प्रकट किया और जिनकी ड्योढ़ी पर ब्रह्मादि लोकपालगण उपहार लेकर स्तुति करते हुए खड़े रहते थे, वे परम श्रीसम्पन्न भगवान् नन्दकुमार हमें आनन्द समुद्रमें निमग्न करते रहें ॥४॥

जिन्होंने शत्रुवर्गको भी खुले हाथों मुक्तिका दान किया, नररूपमें प्रकट होकर भी रुद्र आदि देवगणों पर विजय प्राप्त की और सर्वेश्वर एवं परमस्वतन्त्र होकर भी भक्तजनोंकी अधीनता स्वीकार की, कौरवों की सभामें द्रौपदीको अनन्त वस्त्रराशिरूप वर प्रदान किया और महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित सुर-मुनिजनोंके समक्ष प्रथम पूजा ग्रहण की, वे अमित यशस्वी भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन हम सबको आह्लादित करें ॥५॥

यही नहीं, जिन्होंने अपने प्रिय सखा अर्जुनको गीतारूप ऐसा देदीप्यमान रत्न प्रदान किया,

जिसकी त्रिलोकीमें कोई तुलना नहीं है। परम भक्त उद्धवको परमधाम पधारते समय प्रेमके वशीभूत होकर परमतत्त्वका उपदेश किया तथा अपनी प्राणप्रियतमा श्रीगोपाङ्गनाओंके लिये परम रहस्यमय रस-तत्त्वका निरूपण किया; वे सम्पूर्ण ज्ञानके आश्रय-स्वरूप भगवान् गोपेन्द्रकुमार हम सबका आनन्द सम्पादन करें ॥६॥

जिन्होंने अपने अपराधी जरा नामक व्याधको (जिसने उनके चरणको मृग समझकर बाणसे बींध दिया था) सदेह वैकुण्ठ भेज दिया और इसके विपरीत यादवोंका—जो उनके कुटुम्बी थे और ममताके मुख्य पात्र थे—परित्याग कर दिया, यद्यपि वेदोंने उनकी देहको भगवान्‌की भाँति नित्य बताया है, वे परम वैराग्यशाली भगवान् नन्दनन्दन हमें आनन्दमग्न करते रहें ॥७॥

जो अजन्मा होते हुए भी जन्मग्रहणकी लीला करते हैं, जिनमें आसक्ति और अनासक्ति एक कालमें विद्यमान रहती हैं, जो चेष्टारहित होते हुए भी विविध प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, जो एक ही साथ सर्व व्यापक और परिछिन्न दोनों हैं तथा जो सदा ही अहंता और ममताके आश्रयभूत अपने श्रीविग्रह एवं निज जनोंका त्याग और रक्षा दोनों स्वीकार करते हैं, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नन्दनन्दन सदा हम सबके आनन्दके हेतु बनें ॥८॥

उपर्युक्त भगवत्स्वाष्टक नामक इस विख्यात स्तोत्रका—जो बढ़ते हुए संदेहरूप सैकड़ों प्रकारके ज्वरों को शान्त करनेवाली श्रेष्ठ औषधिके समान है, जो भी मनुष्य सेवन करेगा, वही भगवान् नन्दनन्दनके ऐश्वर्य-रसास्वादनके द्वारा अपनी नीरस बुद्धिको असीम सरस बनाता हुआ उनके प्रिय परिजनोंके सेवकपदको प्राप्त करेगा ॥९॥

[जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी]

आविर्भाव-तिथि

अनन्य भक्त

आज जगद्गुरु श्रीश्रीभक्ति विनोद ठाकुरकी आविर्भाव-तिथि है। भक्तिविनोद ठाकुर अन्याभिलाषी या कर्मी अथवा निर्भेद ब्रह्मका अनुसंधान करनेवाले शुष्क ज्ञानी नहीं थे। वे भगवान्‌के अनन्य भक्त थे, भगवान्‌के सतत भक्तियोगमें प्रतिष्ठित थे और थे भगवज्ज्ञानके अद्वितीय ज्ञाता।

भक्ति, भक्तियोग और भजनीय ज्ञान--अन्याभिलाषी, कर्मी और ज्ञानियोंकी नश्वर और फल्गु चेष्टा की तरह हेय नहीं हैं। कालके द्वारा उत्पत्तिशील, स्थितिवान् और लयधर्मके अधीन उत्पन्न होनेवाले नश्वर भावोंकी तरह भगवद्भक्ति कोई अनित्य और प्राकृत वृत्तिमात्र नहीं है। भक्ति—आत्माकी नित्यवृत्ति है। जिस समय यह नित्यवृत्ति प्राकृत अखण्डज्ञानकी धारणा द्वारा आच्छादित हो जाती है, उस समय जीव या तो मायावादी और नहीं तो प्रकृतिवादी हो पड़ता है।

निरपेक्ष भक्त

ठाकुर महाशयने प्रकृतिवादियों या मायावादियों के अयोग्य मतको कभी भी नित्य-सेवा स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अनात्म मन, बुद्धि और अहंकार आदि सूक्ष्म शरीरको और आत्माको एक वस्तु नहीं बतलाया है। मायावादियोंकी तरह उपास्य और उपासकके समन्वयकी आकांक्षा नहीं की है। मायावादियोंकी तरह उन्होंने मुक्तावस्थामें अचेतन त्रिगुणोंकी साम्यावस्थाको ही जीवोंकी सर्वश्रेष्ठ अवस्था नहीं बतलाया है अथवा प्रच्छन्न-मायावादियोंकी तरह उन्होंने मुक्तावस्थामें निर्विशिष्ट चिन्मात्रवादके साथ

अचिन्मात्रवादकी समन्वयता भी स्वीकार नहीं किया है।

अधोक्षज सेवाके नित्य प्रचारक

वे श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भागवतमें बताये गये अधोक्षजवस्तुकी सेवाके नित्य प्रचारक थे, हैं और नित्यकाल रहेंगे। भाषा-ज्ञानकी सहायता से श्रीमद्भागवतमें प्रवेशाधिकार नहीं मिलता है। जो लोग स्वयं भागवत न होकर—भक्तियोगमें प्रतिष्ठित न होकर, अनित्य भावोंका संग्रह करनेके लिये बड़ा पाठक होनेके अहंकारमें गर्वित होकर श्रीमद्भागवत पढ़ते है, सुननेमें समय नष्ट करते हैं तथा जो लोग अपने खण्ड वाह्यज्ञानको संबल कर श्रीव्यासदेवके समाधिलब्ध भक्तियोगको एक तरह का ऐन्द्रिक ज्ञान मात्र मानते हैं, वे लोग भक्तिके स्वरूपको कनक-कामिनी और प्रतिष्ठाका सोपान मात्र समझते हैं। वे सभी लोग प्राकृत सहजिया अथवा कपट भक्त हैं। ठाकुर महाशय ऐसे-ऐसे कर्मवीरोंको किसी प्रकार का आदर देनेके पक्षमें नहीं थे।

वे अनेक समय कहा करते थे—जो लोग नित्य-सेवावृतिसे वञ्चित होकर अपनेको आत्मधर्ममें प्रतिष्ठित मानते हैं, वे भौतिक चिन्तामें निमग्न जीव अप्राकृत राज्यमें प्रवेशाधिकारका द्वार अपने लिये बिलकुल बन्द कर देते हैं। भगवत्-सेवाविमुख जीव अपनेको विषयोंका भोक्तामानकर नित्य-सत्यसे भ्रष्ट होते हैं। उस प्रकारकी अनात्म चेष्टाओंसे भगवद्भक्तिका अथवा भगवत् प्रेमका अनुसंधान नहीं पाया जाता।

कुसङ्ग और इनका वहिष्कार

जड़ विषयोंके भोगमें उन्मत्त होकर बद्धजीव अपनेको प्रकृतिवादी, मायावादी, ब्रह्मवादी, हठ या राजयोगी, अन्याभिलाषी प्रभृति विभिन्न वेशोंमें सज्जीभूत कर कृतार्थ मानता है, किन्तु अधोक्षज भगवान्की सेवामें तत्पर भक्तजन इन्हें प्राकृत सहजिया अथवा कुसंग मानते हैं तथा इनसे सर्वदा दूर रहते हैं।

आत्मविद् भक्तोंके चरणकमलोंमें शरण लिये बिना नित्य-गति लाभ करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। जीव अपनी अनात्म-प्रतीति द्वारा जड़-भोग्य वस्तुओंको ब्रह्म, माया, आत्मा, और चैतन्य आदि कल्पित संज्ञाएँ प्रदान कर सत्यसे भ्रष्ट हो पड़ता है। श्रीमन्महाप्रभु और उनके पार्षद भक्तोंने श्रीमद्भागवत के प्रतिपाद्य सत्यका प्रचार किया है। किन्तु समयके प्रभावसे कुछ दिनोंमें उसे विलुप्त होते देखकर श्रीगौरहरिने अपने प्रिय पार्षद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुरको उसका पुनः प्रचार करनेके लिए भेजा। भक्तराज ठाकुरने श्रीगौरहरिके अभिलषित कीर्त्तन और प्रचार-प्रणालीको साधारण जीवोंके लिये बोधगम्य करनेके लिये बहुत ही प्रयत्न किये हैं। आइए, हम देखें कि हमलोग उनकी शिक्षाओंको किस परिमाणमें ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत हैं।

उपास्यके सम्बन्धमें ठाकुरकी शिक्षा

उपास्यके सम्बन्धमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी शिक्षा यह है कि—ब्रह्म जिनके अङ्गोंकी कान्ति हैं, परमात्मा जिनके आंशिक प्रकाश-विशेष हैं, वे अद्वय-ज्ञान भगवान् ही जीवोंके नित्यसेव्य वस्तु हैं।

ब्रह्मकी उपासना नहीं होती। जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्धसे रहित केवल निर्विशेष भाव है, जहाँ सेव्य, सेवक और सेवाकी नित्यता स्वीकृत नहीं, उसे परमार्थ नहीं कहा जा सकता। वह पूर्ण वस्तुकी दूरस्थित आंशिक अनुभूति कही जा सकती है।

परमात्माकी उपासनामें परमात्म-सान्निध्य रहने पर भी वहाँ नित्य-सेवा-धर्मरूपा रति अप्रकट रहती है। इससे वस्तु-विज्ञान सम्बन्धी आंशिक योगसिद्धि होने पर भी वह प्रतीति भगवत्ताकी खण्ड प्रतीति मात्र है।

अखण्ड अद्वयज्ञान-स्वरूप भगवत् प्रतीतिके अभावमें ब्रह्म-प्रतीति अथवा परमात्म-प्रतीति ही प्रबल रहती है। जड़से परे होने पर भी इन दोनों

प्रतीतियोंमें भौतिक विचार ही प्रबल रहते हैं। इन्द्रियज-ज्ञान भ्रम-प्रमादादि चार दोषोंसे युक्त होता है तथा ज्ञाता और ज्ञेयकी नित्य सत्ताका विरोधी होता है। एकमात्र भगवदुपासना ही ऐसी वस्तु है जो जीवको प्रकृतिसे परे चिन्मय राज्यमें ले जाकर भगवानकी सेवामें नियुक्त करती है। कर्म, ज्ञान अथवा योग आदि साधनोंमें वह शक्ति नहीं है।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थोंमें इन्होंने नित्य उपासकोंके उपास्य-तत्त्व, उपासना-तत्त्व और प्रयोजन-तत्त्वके सम्बन्धमें भौतिक विचारोंका पूर्णतया खण्डन कर जीवोंके सहज, निर्मल और नित्य कृष्णप्रेमका अनुसंधान दिया है। करुणावरुणालय श्रीगौरहरि हम जैसे मायाबद्ध जीवोंकी दुरवस्था लक्ष्यकर अपने नित्यमुक्त पार्षदोंको हमारे पास भेजते हैं। हमलोग उन्हीं पार्षद भक्तोंके मुखसे ही प्रकृतिसे अतीत राज्यके नित्य-वर्त्तमान सत्यकी सम्पूर्ण बातें सुननेका सुयोग पा सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश यदि हम भक्ति-मार्गको आत्माकी अविच्छिन्न गति नहीं मानते हैं तो हमारी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहती।

भक्तकी आविर्भाव-तिथिकी पूजा

हमने कोटि-कोटि जन्म नश्वर स्थूल और सूक्ष्म शरीरों की सेवामें बिताकर अपना परमार्थ नष्ट किया है और आगे भी नष्ट करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। यदि हम आज भी नहीं चेते तो भक्तकी आविर्भाव-तिथिकी पूजा करनेका सुयोग नहीं पायेंगे। हमें हरि-विमुख अनित्य कर्मोंमें मनोयोग देनेको यथेष्ट समय मिलता है, परन्तु हमारे लिये सबसे अधिक प्रयोजनीय विषयोंमें थोड़ा भी समय देनेका अवकाश नहीं मिलता। इसे ही कहते हैं—भाग्य।

सुकृतिशाली जीव ही सत्संग प्राप्त कर सकते हैं

सुकृतिके प्रभावसे ही जीव सत्सङ्ग प्राप्त करता है। सुकृति के अभावमें कपट-भक्त या प्राकृत सहजिया आदिका ही संग प्राप्त होता है। इनके कपट आँसुओं-कपट भावों तथा कपट दीनताको ही भोली-भाली सुकृतिरहित जनता भक्तिका स्वरूप मान बैठती है तथा वंचित होती है।

ठाकुरके सेवकोंके संगसे ही ठाकुरको जाना जा सकता है। ठाकुर भक्तिविनोद महावदान्य कृष्णप्रेमके दाता श्रीकृष्णचैतन्यदेवके अत्यन्त प्रियपात्र हैं। जो लोग श्रीभक्तिविनोदको जानना चाहते हैं, उन्हें उनके अनुगत सेवकोंका संग करना चाहिये। सत्संगके प्रभावसे आत्मगत वृत्तियाँ उन्मेषित होती हैं तथा आत्मधर्म उन्मेषित होनेसे त्रिविध प्रकारके दुखोंसे छुटकारा मिल जाता है और आत्मा सुप्रसन्नता लाभ करती है।

गुरुसेवासे भगद्भक्तिकी प्राप्ति

जो लोग प्रत्यक्ष ज्ञानको मुख्यरूपसे अवलम्बन कर तथा अनुमान और आप्तवाक्योंको उसका सहायक मानकर इनकी सहायतासे भक्तिका स्वरूप निर्णय करना चाहते हैं, वे असफल होते हैं। भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेका यह सही तरीका नहीं है। भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेका सच्चा पथ गुरुदेवसे प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य आदि प्रमाणोंके ऊपर निर्भर रह कर भक्ति अथवा भगवानको प्राप्त नहीं किया जा सकता। ये सब इन्द्रिय-सुख मात्र हैं, जो भक्ति के परम शत्रु हैं।

जिनके चरित्रकी प्रत्येक क्रियाओंमें भक्तिका सुष्ठु रूपसे आविर्भाव हुआ था, उन श्रीरूपानुगवर श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी आविर्भाव-तिथि पाठक वर्गके हृदयमें शुद्ध भक्तिका संचार करें।

श्रीठाकुर महाशयके प्रवर्त्तित अनुष्ठानके विघ्न-समूह

(क) प्रचार कार्यके लिये भक्ति विनोद ठाकुरने श्रीगौरसुन्दरकी इच्छानुसार श्रीविश्व-वैष्णव राजसभा का पुनः संस्थापन किया है। गौरसुन्दरकी इच्छानुसार श्रीनाम हट्टका पुनरुद्दीपन किया है, श्रीनवद्वीप धामको उज्ज्वल करने के लिये श्रीधाम-प्रचारिणी सभाकी स्थापना की है, श्रीगौड़ीय-वैष्णव समाजका

विशुद्धरूपमें पुनर्गठन करनेकी चेष्टा की है। किन्तु अपनेको उनका अनुगत अभिमान करनेवाला आलस्यपूर्ण एक भजनकारी दल भक्तिके किसी भी अंग या अनुष्ठानका तन, मन और वचनसे पालन नहीं करता है।

(ख) श्रीगौरसुन्दरकी इच्छासे भक्तिविनोद ठाकुर ने भगवद्भक्तिका व्यापक प्रचार करनेके लिए बड़ी सुन्दर-सुन्दर योजनायें बनायी थीं। उन्होंने सभाओं में, भक्तोंके संघोंमें और देवालयोंमें संकीर्तन और हरिकथा प्रचार करनेकी प्रथाकी सृष्टि की थी। परन्तु कुछ वेतन-भोगी लोगोंने अपना पेट पालने तथा परिवारका पालन-पोषण करनेके लिए उस प्रथा को अपनी जीविका बना रक्खी है। उनके शास्त्र-ग्रन्थ पाठ और व्याख्या करनेकी प्रथाका अनुचित लाभ उठाकर वेतन-भोगियोंके दलने उससे कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा संग्रह कर आचार्यके कार्यमें विष-वृक्ष बोनेका काम किया है।

(ग) कुछ लोग ठाकुरके ग्रन्थोंके प्रचार कार्यका अनुकरण कर—शास्त्र-ग्रन्थ-प्रचारकी आड़में पूरा व्यवसाय चलाते हैं, उससे उपार्जित धनको अपने उदर-पूर्ति और कुटुम्ब-भरणमें लगाते हैं। इस प्रकार भक्ति-प्रचार कार्यमें जंजाल उपस्थित कर वे लोग अपना चरित्र कलंकित करते हैं।

(घ) यह भक्ताभिमानी अपसम्प्रदाय उनकी शिक्षा-दीक्षाको अर्थोपार्जनका साधन बनाकर भक्ति-पथको कण्टकाकीर्ण बना रही है।

(ङ) श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा पुनः संस्थापित वर्णाश्रम-धर्मकी शास्त्रीय पद्धतिको कण्टकित करने से, उनके द्वारा प्रचलित शुद्ध-वैष्णव समाजका पुनर्गठन नहीं करने से अथवा इन विषयोंसे उदासीन रहनेसे हरिकथा चिरदिनोंके लिये इस जगत्से विलुप्त हो जायगी— जो लोग ऐसा नहीं सोचते, वे थोड़े ही दिनोंमें हरिविमुखताकी पराकाष्ठा पर पहुँच कर ध्वंस हो जायेंगे।

(च) वैष्णव-स्मृतियोंके प्रचार-कार्यमें ठाकुरका अनुसरण न कर नास्तिक पञ्चोपासकोंका आनुगत्य स्वीकार करना वैष्णवी-श्रद्धाका परिचय नहीं है।

(छ) सामयिक-पत्रोंके द्वारा दूर-दूरके श्रद्धालु जीव भक्तिविनोद ठाकुरकी शिक्षाओं और आदर्शोंसे अनुप्राणित होनेका सुयोग प्राप्त करते थे। जो लोग अनुचित लाभ उठाकर, उसका अनुकरण कर उसे एक व्यवसाय मात्र बना रक्खा है—उसे अपने भोग-विलास और उदर-पूर्तिका साधन बना लिया है, वे परमार्थ से पतित होकर ध्वंसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं।

(ज) प्राचीन भक्तोंने अब्द, मास, तिथि, पक्ष, आदिके नाम भगवान्के नामके ऊपर रक्खा है; इसलिए कि सब समय भगवन्नामका अनुशीलन होता रहे। भक्तिविनोद ठाकुरने उसका पुनः प्रचलन किया है। परन्तु उस तथाकथित भक्त सम्प्रदायमें इस प्रथा का आदर नहीं है।

(झ) श्रील ठाकुरके अनुमोदित मठ-मन्दिर और भक्तिस्थानोंका संरक्षण कार्य परित्याग कर जो शिष्यब्रुव (कपट-शिष्य) अपने-अपने पेट-पालन कार्यमें व्यस्त हैं, वे गुरुद्रोही हैं। इस प्रकार आज-कल ऐसे-ऐसे असाधुओंकी संख्या दिनों दिन बढ़ रही है। इनका कल्याण होना कठिन है।

(ञ) श्रीठाकुरने भक्तिशास्त्रोंके पठन-पाठन में लोगोंको उत्साहित करनेके लिये भक्ति-शास्त्रकी परीक्षाकी प्रणालीका आविष्कार किया था। ये उनके इस कार्यका अनुसरण करना छोड़कर अनुकरण द्वारा जागतिक प्रतिष्ठाकी वृद्धि कर रहे हैं।

भजनमें आलस्य करनेसे श्रीगुरु वैष्णवोंकी सेवा नहीं हो सकती। श्रीश्री गुरुगौराङ्ग अथवा ठाकुर महाशयकी सेवामें जिन निष्कपट भक्तोंने अपना तन-मन और वचन लगा दिये हैं, ऐसे व्यक्ति ही शुद्ध भक्तोंके आशा-स्थल हैं। ठाकुर महाशयके पूर्वोक्त अनुष्ठानोंकी सेवा न करनेसे अपना कल्पित आलस्य जीव-दयाका परिचय नहीं है। यदि हरि भजनके प्रति रुचि है—यदि माया बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है तो—

'ताते कृष्णे भजे करे गुरुर सेवन ।
मायाजाल छूटे पाय कृष्णेर चरण ॥'

—का पुनः पुनः अनुशीलन करना चाहिए। इससे अवश्य ही सुफल प्राप्त होगा।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धांत सरस्वती

धैर्य

भजनमें धैर्यकी आवश्यकता

भजनमें लगे हुए व्यक्तियोंके लिए धैर्यकी नितान्त आवश्यकता है। जिसमें धैर्य गुण होता है, वे धीर कहलाते हैं। धैर्यके अभाव में मनुष्य चञ्चल हो उठता है। जो अधीर होते हैं, वे कोई भी कार्य नहीं कर पाते। धैर्य गुणके द्वारा साधक अपने आप को वशमें करके अन्तमें जगत्को अपने वश कर लेता है।

छः प्रकारके वेगोंको धारण करना ही धैर्य है

'उपदेशामृत' के प्रथम श्लोकमें धैर्यगुणका उल्लेख आया है। यथा—

वाचो वेगं मनसः क्रोध-वेगं,
जिह्वा-वेगमुदरोपस्थ-वेगं।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः,
सर्वामपीमां पृथ्वी स शिष्यात् ॥

छः वेग ये हैं—वाणीका वेग, मनका वेग, क्रोध का वेग, जिह्वाका वेग, उदरका वेग, उपस्थका वेग।

वाणीका वेग और उसके दमनका उपय।

जब अधिक बातें बोलनेकी इच्छा होती है, तब मनुष्य वाचाल हो पड़ता है। जब मनुष्य अपनी वाणियोंको नियमित करनेमें असमर्थ होता है, पर-चर्चा होने लगती है। परचर्चा द्वारा बहुतोंके साथ शत्रुता हो जाती है। अनावश्यक वचन बोलना नितान्त मूर्खताका कार्य है। किन्तु संसारी मनुष्य सर्वदा ही अनावश्यक वाक्योंका प्रयोग कर समय नष्ट करता है। फल-स्वरूप अनेक दुःख भोग करता है। धार्मिक मनुष्य इस उत्पातसे बचनेके लिए मौनव्रतका अवलम्बन किया करते हैं। हमारे ऋषि-योंने सभी अच्छे-अच्छे व्रतोंके साथ मौनव्रत धारण करनेकी व्यवस्था दी है। भजन-पिपासु व्यक्तिको अनावश्यक बातें नहीं बोलनी चाहिए। यदि अना-वश्यक बात बोलनी ही पड़ रही हो, तो अवश्य अवश्य मौन धारण कर लेना चाहिए। भगवत्कथाके अतिरिक्त अन्य सभी कथाएँ (बातें) अनावश्यक हैं। परन्तु जो विषय-कथाएँ हरिभक्तिके अनुकूल रूपमें बोली जाती हैं, वे भी अनावश्यक नहीं हैं। अतएव भक्तोंको हरि-कथा और हरि-कथाके अनु-कूल कथाएँ ही बोलनी चाहिए। इनके अतिरिक्त सभी कथाएँ वाणीके वेगमें परिणित होंगी। इस वाणी-वेगको सहनेमें जो समर्थ होते हैं, वे ही धीर पुरुष हैं।

मनका वेग और उसके दमनका उपाय

मनका वेग सहना भी धीर व्यक्तिका धर्म है। जब तक मनके वेगको धारण करनेका अभ्यास नहीं होता, तब तक मन लगाकर भजन कैसे हो सकता है? संसारी लोगोंके मनमें सर्वदा आशा-रूप वेगका उदय होता रहता है। सोनेके समयके अतिरिक्त सब समय संसारी मनुष्य नाना प्रकारके मनोरथों पर आरूढ़ होकर नाना प्रकारकी चिन्ताओंकी उधेड़-बुन में व्यस्त रहता है। इस कार्यसे उसे कभी अवकाश नहीं मिलता। निद्राकालमें भी उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती,—दुःस्वप्न, और सुस्वप्न रूप चिन्ताएँ उसका पीछा नहीं छोड़तीं। ऋषियोंने मन-वेगको नियमित करनेके लिए ही अष्टाङ्ग-योग और राजयोगकी

कल्पना की है। परन्तु परमेश्वरका नियम यह है कि—मनको थोड़ा उच्च रसका आस्वादन कराकर उसे क्षुद्र प्राकृत रससे दूर कर नियमित करना होता है, जिनकी भक्ति-पथमें रुचि है, वे अति सहज ही मनको नियमित कर सकते हैं। मन वेगके बिना रहना नहीं चाहता। उसे अप्राकृत विषयोंमें वेगवान करने से वह बड़े वेगसे अप्राकृत विषयोंमें ही रम जाता है। अप्राकृत विषयोंका रसास्वादन कर लेने पर मन तुच्छ प्राकृत-विषयोंके प्रति वेगवान् नहीं होता।

मनको दमन करनेके लिये योगकी अपेक्षा शुद्ध भक्ति ही सर्वोत्तम उपाय है

बहुतेरे ऐसा सोचते हैं कि अष्टाङ्ग योगके बिना मनको नियमित करनेके लिए और कोई उपाय नहीं है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मनको भक्ति द्वारा जितना सहज रूपमें नियमित किया जा सकता है उतना योगसे नहीं किया जा सकता। पतञ्जलि मुनिने भी इसे स्वीकार किया है। वे ईश्वर-प्रणिधान अर्थात् भक्ति योगको भी अष्टाङ्ग योगकी तरह मनको नियमित करनेका उपाय स्वीकार करते हैं। पतञ्जलिका ईश्वर-प्रणिधान शुद्धाभक्ति नहीं है, बल्कि काम्य भक्ति मात्र है। जिस भक्तिका प्रधान उद्देश्य मनको नियमित करना है, वह कदापि अन्याभिलाषिता-शून्य निर्मल भक्ति नहीं हो सकती है। आनुकूल्य पूर्वक कृष्णानुशीलन अर्थात् कृष्णकी सेवा ही एक मात्र शुद्ध भक्ति है। अतएव जब शुद्ध भक्ति का अनुष्ठान होने लगता है, तब चित्त अपने आप प्रसन्न हो उठता है। 'येन केन प्रकारेण मनः कृष्णे नियोजयेत्' (श्रीमद्भा० ७।१।३२) इस उपदेश का पालन करने से तथा मनको श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें लगानेसे मन सहज ही नियमित हो जाता है, तब वह किसी दूसरे विषयोंकी तरफ नहीं दौड़ता। इस प्रकार शुद्ध कृष्णभक्ति द्वारा साधकका मनोवेग नियमित हो जाता है। इस विषयको भली-भाँति धारण करलेनेसे योग और भक्तिका स्वाभाविक भेद समझा जा सकता है।

क्रोध-वेग और उसके दमनका उपाय

भक्ति-पिपासुओंके लिये क्रोध-वेगको दमन करना नितान्त कर्तव्य है। काम भोगमें बाधा पड़ने से क्रोधकी उत्पत्ति होती है। क्रोधसे क्रमशः विनाश तक भी हो जाता है। चैतन्यचरितामृत (मध्य १९। १४९) में कहते हैं— "कृष्ण भक्त निष्काम अतएव शान्त।" जो शुद्धाभक्तिका आस्वादन करते हैं, उनके चित्तमें किसी प्रकारका तुच्छ काम नहीं रहता। अतएव कामके अभावमें उनके मनमें क्रोध उत्पन्न होनेकी तनिक भी संभावना नहीं रहती। काम्य-भक्ति द्वारा क्रोधका दमन नहीं किया जा सकता। केवल विवेक द्वारा भी उसका दमन नहीं किया जा सकता है। विवेक द्वारा जीता हुआ क्रोध स्थायीरूपमें नियमित नहीं होता, बल्कि अस्थिर होता है। विषय-राग विवेकको थोड़े ही समयमें हरा कर अपने राज्यमें क्रोधको पुनः स्थान दे देता है।

श्रीमद्भागवतमें (११ वें स्कन्धके २३ वें अध्याय में) एक त्रिदण्डिभिक्षुककी कथा है। उज्जैनीमें एक धनी विप्र रहता था। वह बड़ा ही लोभी, कृपण और क्रोधी था। उसकी कृपणता और बुरे-स्वभावसे उसका सारा परिवार उसका शत्रु बन गया था। समयके फेरसे कुछ ही दिनोंमें उसका सर्वस्व नष्ट हो गया। इससे उसके मनमें संसारके प्रति उत्कट वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह त्रिदण्डिभिक्षुकका धर्म लेकर भक्ति-योगका साधन करने लगा। भक्ति-योग के प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें वह क्रोधका दमन करने में वह समर्थ हो गया। यथा—

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः।
दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बहवीभिः परिभूतिभिः ॥३३॥
केचित् त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुं।
पीठञ्चैकेऽक्षसूत्रञ्च कन्थां चीराणि केचन।
प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्यददुर्मनेः ॥३४॥
अन्नञ्च भैक्ष्यं सम्पन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे।
मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मुद्धनि॥३५॥
क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः। ॥३७॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकञ्च यत् ।
भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यते ॥४०॥

—उस उज्जैन निवासी ब्राह्मणने हृदयकी ग्रन्थी 'मैं' और 'मेरे' की गांठ खोल कर शान्त-भिक्षु हो गया। उस बूढ़े और मलिन ब्राह्मणको देखते ही दुष्ट व्यक्ति टूट पड़ते और तरह-तरहसे उसका तिरस्कार करके उसे तंग करते। कोई उसका त्रिदण्ड छीन लेता, तो कोई भिक्षापात्र ही झटक लेता। कोई कमण्डलु उठा ले जाता, तो कोई आसन, माला और कन्था ही ले कर भाग जाता। कोई तो उसकी लँगोटी और वस्त्रको ही इधर-उधर डाल देते। कोई-कोई वे वस्तुएँ देकर और कोई-कोई दिखला-दिखला कर पुनः छीन लेते। जब वह अवधूत मधुकरी माँगकर लाता और बाहर नदी तटपर भोजन करने बैठता, तो पापी लोग कभी उसके सिरपर मूत देते, तो कभी थूक देते। कोई-कोई उसका तिरस्कार करके इस प्रकार ताना कसते कि 'देखो-देखो, अब इस दुष्टने धर्मका ढोंग रचा है। धन-सम्पत्ति जाती रही, स्त्री-पुत्रोंने घरसे निकाल दिया, तब भीख माँगनेका रोजगार कर लिया है। किन्तु इस प्रकार अपमानित हो कर भी वह सब कुछ चुपचाप सह लेता। उसे कभी ज्वर आदिके कारण दैहिक पीड़ा सहनी पड़ती, कभी गर्मी सर्दी आदिसे दैवी कष्ट उठाना पड़ता और कभी दुर्जन लोग अपमान आदिके द्वारा उसे भौतिक पीड़ा पहुँचाते, परन्तु भिक्षुकके मनमें इससे कोई विकार न होता। वह समझता था कि यह मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है और इसे मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा।

गृहस्थ और संन्यासी सबके लिये त्रिदण्डि-भिक्षुककी शिक्षा ग्रहणीय है

तब उस भिक्षुकने ऐसा उद्गार प्रकट किया—

एवं स आस्थाय परात्मनिष्ठा—
मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं
तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥श्रीमद्भा०११।२३।५७

मैं आत्मा अर्थात् क्षुद्र जीव हूँ। कृष्ण परात्मा हैं। बहिर्मुख जीव संसार-निष्ठ होकर भौतिक, दैहिक, और दैविक कष्टोंको भोग कर रहा है। कृष्ण-सेवा ही जीवका नित्यधर्म है। इस संसारमें मैं संसार-निष्ठका परित्याग कर परात्म-निष्ठा रूप कृष्णका भजन करूँगा। मन, वाणी, और क्रोध आदिको वशीभूत कर भक्तिके अनुकूल जीवनके साथ परात्म-निष्ठाका अवलम्बन करूँगा। बड़े-बड़े प्राचीन ऋषियों ने इस परात्म-निष्ठाका आश्रय करके इस संसार-समुद्र को पार किया है। यह परात्म-निष्ठा कहीं-कहीं गृहस्थ-धर्ममें जनकादिकी तरह लक्षित होती है, तो कहीं-कहीं पर भिक्षु-धर्ममें सनक-सनातन आदिकी तरह परिलक्षित होती है। वास्तवमें उभय अवस्थाओंकी परात्म-निष्ठा एक ही चीज है। परात्म-निष्ठाके बिना इस दुरन्त-पार तमोमय संसार-सागरको पार नहीं किया जा सकता है। मुकुन्द-सेवन ही हमारा एक मात्र आश्रय है। मैं भगवान मुकुन्दके चरणकमलोंकी सेवा द्वारा ही उसे पार करूँगा।—इस भिक्षु गीतसे हम स्पष्ट ही देख रहे हैं कि योगादि चेष्टा द्वारा संसार-सागरको पार करना असम्भव है। श्रीकृष्ण की भक्ति-निष्ठा द्वारा सब-कुछ प्राप्त किया जा सकता है। जो भक्तिका आश्रय कर उसके द्वारा मन, वाणी और क्रोधके वेगोंका दमन करते हैं, वे ही धीर हैं।

जिह्वाका वेग और उसके दमनका उपाय

जिह्वा-वेगको दमन करना भी नितान्त कर्तव्य है। मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय, और अम्ल—इन छः प्रकारके रसोंका आस्वादन करनेके लिये संसारी मनुष्य सर्वदा व्यस्त रहता है। आज खीर खाऊँगा, आज मोहनभोग खाऊँगा, आज उत्तम पेय पान करूँगा'—ऐसी-ऐसी लालसाएँ विषयी लोगोंको चैनसे बैठने नहीं देतीं। जिह्वा जितना ही भोजन करती है उसकी उतनी ही भोग लालसा बढ़ती जाती है। जो लोग जिह्वाकी लालसासे इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, उन लोगोंके लिये कृष्ण-प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने कहा है—

जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय ।
शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय ॥
वैरागी हइया करे जीह्वार लालस ।
परमार्थ जाय, आर हय रसेर वश ॥
वैरागीर कृत्य-सदा नाम-संकीर्तन ।
शाक-पत्र-फल-मूले उदर भरण ॥
(चै. च. अ. ६।२२७,२२४,२२६)

अर्थात्, जिह्वाकी लालसाको पूर्ण करनेके लिये जो लोग इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, वे शिश्नोदर व्यक्ति कृष्णको नहीं पा सकते। जो वैरागी होकर जिह्वाकी लालसा करता है, उसका परमार्थ तो नष्ट होता ही है, अधिकन्तु रसोंके वशमें होकर वह अपना लौकिक अर्थ भी गँवा डालता है। वैरागीको सर्वदा नाम-संकीर्त्तन करना चाहिए तथा शाक, पत्ता, फल, मूल आदि भोजन कर उदरकी पूर्त्ति करनी चाहिए।

जो भोज्य पदार्थ अनायास उपलब्ध हों, उसीके द्वारा उदर भरण कर लेना उचित है। कृष्णको सात्विक-द्रव्य निवेदन कर उनका प्रसाद सेवन करने से जिह्वाकी लालसा दूर होती है तथा साथ-ही-साथ कृष्णका अनुशीलन भी हुआ करता है। यदि बिना परिश्रमके ही सुखाद्य भगवत्प्रसाद मिल जाय तो उससे जिह्वाकी लालसा बढ़ती नहीं, प्रत्युत् धीरे-धीरे दूर हो जाती है।

उदर-वेग और उसके दमनका उपाय

उदर-वेग एक बड़ा उत्पात है। जिस आहारसे क्षुधा मिट जाय और शरीरको रक्षा हो, वही आहार उदरके लिये आवश्यक है। भक्ति-पिपासु व्यक्ति युक्त आहार द्वारा शरीरकी रक्षा करेंगे। जो लोग ऐसा न कर आवश्यकतासे अधिक भोजन करते हैं, वे पेटू हैं। 'मितभूक् अर्थात् परिमित रूपमें भोजन करने वाला'—इसे भक्तोंका एक लक्षण माना गया है। लघु आहार करनेसे शरीर हलका रहता है तथा भजन में बाधा नहीं पड़ती। जो उदर-वेगको सहनेमें समर्थ नहीं होते, वे आहार-लोलुप होते हैं। भगवत् प्रसाद के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ भोजन नहीं करूँगा—जो लोग ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेते हैं, वे उदर-वेग को सहनेमें समर्थ होते हैं। व्रतोंमें उपवास करना उदर-वेगको दमन करनेका शिक्षा-स्थल है।

उपस्थ-वेग और उसका दमन

उपस्थ-वेग बड़ा ही भयानक होता है। 'लोके व्यवयामिष-मद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना' —श्रीमद्भागवत (११।५।११) के इस श्लोकका तात्पर्य अतिशय गूढ़ है। जो रक्त-मांस द्वारा गठित शरीरमें निवास करते हैं, उनके लिये स्त्री-संग एक प्रकारसे निसर्ग-जनित धर्म हो पड़ा है। इस निसर्गको (विकृत स्वभावको) संकुचित करनेके लिये ही विवाहकी विधि दी गयी है। जो लोग विवाह-विधि से मुक्त होकर उच्छृङ्खल होना चाहते हैं, वे प्रायः पशुवत्-क्रियाओंमें प्रवृत्त रहते हैं और जो लोग सत्संगमें रहकर भजनके प्रभावसे नैसर्गिक विधिको अतिक्रम कर अप्राकृत विषयमें रुचि प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए स्त्री-पुरुष संग अत्यन्त तुच्छ है। जो विषय-रोगसे पूर्ण हैं—विषय-भोग की वासनाएँ जिनमें भरपूर हैं, वे उपस्थ-वेगको सहनेमें असमर्थ होते हैं—अतः सर्वदा अवैध-कर्मोंमें प्रवृत्त रहते हैं। इस विषयमें साधक भक्त दो प्रकारके होते हैं। सत्संग के प्रभावसे जिनकी रति (भगवत्-भाव) शुद्ध हो चुकी है, वे सम्पूर्ण रूपसे स्त्रीसंगका परित्याग कर भजन करते हैं। ये लोग गृहत्यागी वैष्णव होते हैं। दूसरे वे हैं, जिनकी स्त्रीसंगकी प्रवृत्ति दूर नहीं हुई है। ये लोग विधिपूर्वक विवाह कर गृहस्थ धर्मका पालन करते हुए भगवान्का भजन करते हैं। वैध-स्त्रीसंगको ही उपस्थ-वेग-धारण कहते हैं।

षड्वेग दमनका सर्वोत्तम उपाय

पूर्वोक्त छः वेगोंका विधि पूर्वक दमन करनेसे भजनमें सहायता मिलती है। किन्तु ये वेग प्रबल रहने पर भजनके प्रतिकूल हो पड़ते हैं। उक्त छः प्रकारके वेगोंके दमन करनेका नाम ही धैर्य है। जब तक शरीर रहता है, तब तक ये प्रवृत्तियाँ सम्पूर्णरूपसे दूर नहीं होती, परन्तु इनको यथायोग्य विषयोंमें नियुक्त

कर सकने पर ये दोष-जनक नहीं होतीं। सारांश यह कि वेगोंको उनके विषयोंसे हटाकर भक्तिके अनुकूल करना ही बुद्धिमानीका काम है। जैसे कामको सासांरिक विषयोंसे हटाकर कृष्णसेवामें, क्रोधको भक्त-द्वेषीके प्रति, लोभको सत्संगमें हरिकथामें, मद को कृष्णगुणगानमें तथा इसी प्रकार समस्त वेगोंको भगवद् विषयोंमें नियुक्त कर लेने पर ये बाधक नहीं होते, बल्कि सहायक होते हैं। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है, जब कि धैर्यगुण हो।

प्रत्येक साधकमें धैर्य-गुण रहना आवश्यक है

'धैर्य'—शब्दको प्रयोग करनेका एक और भी तात्पर्य है। जो लोग साधन कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, वे लोग कुछ फल प्राप्त करनेकी कामना रखते है। कर्मी—कर्मकाण्डसे स्वर्ग-सुखकी आशा करता है। ज्ञानी—ज्ञानकाण्डसे मुक्तिकी आशा करता है। और भक्त—भक्ति-साधनसे कृष्णकी प्रसन्नता लाभ करने की आशा करता है। कुछ साधक ऐसे होते हैं, जो साधन करते-करते फल प्राप्त करनेमें देर होनेपर अधीर होकर परमार्थसे विच्युत हो पड़ते हैं। अतएव फलकी आशा कर जो भजन-प्रयासी व्यक्ति धैर्य अवलम्बन करते हैं, केवल वे ही फल प्राप्त करते हैं। आज हो, कल हो, या सौ वर्ष बाद हो अथवा दस जन्मके बाद ही क्यों न हो कभी न कभी कृष्ण मुझ पर अवश्य ही दया करेंगे, मैं दृढ़तापूर्वक उनके चरण-कमलोंका आश्रय करूँगा—उन्हें कभी नहीं छोड़ूँगा—भक्तिसाधकके लिये ऐसा धैर्य नितान्त वांछनीय है।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

शरणागति

अनुकूल ग्रहण—वाचिक और मानसिक

शुद्ध भक्त, चरण रेणु, भजनके अनुकूल।
भक्त सेवा, परम सिद्धि, प्रेमलता मूल॥
माधव-तिथि, भक्ति-जननि, यत्नसे पालन करूँ।
कृष्ण वसति, वसति मानूँ, प्रेम-सहित वरूँ॥
गौर मेरे, जहाँ-जहाँ, भ्रमण किये रंग में।
मैं भी वहाँ भ्रमण करूँ, प्रणयी भकत संग में॥
मृदङ्ग वाद्य, सुनने को मन, अवसर सदा याचे।
गौर-विहित, कीर्त्तन सुन, आनन्द हृदय नाचे॥
युगल मूर्त्ति, निरख कर, परम हर्ष होता।
प्रसाद सेवा, करते ही सब प्रपंच विजित होता॥
गृह में जिस दिन, भजन देखूँ, गृह गोलोक भाता।
चरण द्रव, गंगा निरख, परम सुख पाता॥
तुलसी देखि मगन नयन माधव-प्रिया जानि।
गौर-प्रिय, शाक सेवन से, जीवन सार्थक मानि॥
भक्ति विनोद, कृष्ण भजन में, अनुकूल पाये जिसे।
प्रतिदिवस, परम सुखसे, स्वीकार करे उसे॥

शक्तिपूजा (दुर्गा-पूजा) का रहस्य

'दुर्गा'—नामका कारण

'दुर्गा'—शब्दके अनेक अर्थ हैं। द+उ+र्+ग+आ=दुर्गा। 'द'-दैत्योंके विनाश अर्थमें, 'उ'-विघ्न-विनाशके अर्थमें, 'रेफ्'-रोगोंके विनाशके अर्थमें, 'ग'-पापोंको नष्ट करनेके अर्थमें तथा 'आ-भय और शत्रुओंके विनाशके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। 'दुर्ग'—शब्दसे दुर्गम भवसागर और संकटका भी बोध होता है; इसलिए चण्डीमें 'दुर्गम भवसागरको पार करानेवाली नौका स्वरूप होनेके कारण अथवा संकटसे रक्षा करनेवाली होनेके कारण देवीको 'दुर्गा' कहा गया है—

'दुर्गासि दुर्ग-भवसागर-नौरसङ्गा।'
'दुर्गायै दुर्ग पारायै'

'दुर्ग'-नामक एक असुरका वध करनेके कारण भी इनको 'दुर्गा' कहा गया है। 'ब्रह्म-संहिता' में दुर्गाको भगवान्‌की स्वरूप-शक्तिकी छाया स्वरूपा माना गया है। यह छाया-शक्ति—दुर्गा भगवान्‌की प्रेरणासे इस प्रापञ्चिक जगत्‌की सृष्टि, पालन, एवं लय करती है।

'सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका,
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा,
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

उनका कार्य

चतुर्दशभुवनात्मक जगत्‌की अधिष्ठात्री देवीका नाम 'दुर्गा' है। ये संसाररूप दुर्गकी रक्षायित्री हैं। भगवान्‌की स्वरूपशक्तिको अन्तरङ्गा शक्ति अथवा योगमाया भी कहते हैं। योगमायाका सम्बन्ध केवल अप्राकृत जगत्‌से है। ये भगवान्‌की लीलामें सहायता किया करती हैं। इसी योगमायाकी छाया अर्थात् उनके अंशको 'महामाया' कहते हैं। यह भगवान्‌की बहिरंगा-शक्ति हैं। महामायाका सम्बन्ध प्राकृत जगत्‌से है। ये भगवद्-विमुख जीवों द्वारा पूजित होती हैं तथा उन्हें सांसारिक विषय-भोग आदि अनित्य और तुच्छ सुखोंको प्रदान कर दुःखपूर्ण संसार-सागरमें डुबो देती हैं। जो लोग सत्संगका सेवन करते हुए एकमात्र भगवान्‌की ही शरण ग्रहण करते हैं, दुर्गादेवी उन्हें इस प्रापञ्चिक जगत्‌से मुक्तका पथ बतलाती हैं। अन्यथा समस्त प्रकारके सकाम उपासकोंको अर्थ, धर्म और काम रूप त्रैवर्गिक सुख प्रदानकर उन्हें वंचित ही करती रहती हैं। भगवान्‌की कृपाके बिना इस दुस्तरा मायाको पार करना असंभव है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७।१४)

उत्पत्ति-कथा

[क] मार्कण्डेय पुराणमें (चण्डीमें) दुर्गा देवीकी उत्पत्तिकी एक बड़ी ही रोचक कथा है-महिषासुर ब्रह्मासे वर प्राप्त कर देवताओं पर भीषण अत्याचार करने लगा। दुःखी देवगण ब्रह्माजीको अगुवा बनाकर हरिहरके पास पहुँचे और रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाया। महिषासुरके अत्याचारोंकी बातें सुन कर हरि-हर क्रोधसे काँपने लगे। इसी समय इनके मुखोंसे एक-एक अद्भुत महातेज निकले। साथ ही ब्रह्मा और वहाँ उपस्थित सभी देवताओंके शरीरोंसे भी एक-एक तेज निकले। क्षण भरमें वे सभी तेज एक साथ मिल गये और उसीसे सिंहवाहिनी दसभुजाओंवाली दुर्गादेवी प्रगटित हुईं। विष्णुके तेजसे उनकी दोनों भुजाएँ और शिवके तेजसे उनका मुख मण्डल बना। सब देवाओंने अपना-अपना अस्त्र देवीको दान किया। उस महा विकराल बदनीके विकट हास्य

और भैरव नादसे दिग-दिगंत काँप उठा। देव, गन्धर्व और मुनिजन देवीकी स्तुति कर महिषासुरके अत्याचारोंसे अपनी रक्षाके लिए प्रार्थना करने लगे। देवी उन्हें अभय प्रदान कर महिषासुरकी तरफ लपकी। घोर युद्ध मच गया। शत्रु दलका संहार करते-करते अन्तमें अपने भयंकर खड्गसे महिषासुरका सिर काट डाला। इस प्रकार देवीने असुरोंका ध्वंस कर देवताओंकी रक्षा की थी।

[ख] स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंशमें सुरथ नामक एक राजा थे। कालके प्रभावसे अपने शत्रुओं द्वारा पराजित होकर राज्य छोड़कर जंगलमें भागनेके लिये विवश हुए। वहाँ उन्होंने देवीकी आराधना की और उनकी कृपासे अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।

[ग] उसी समय समाधि नामक एक धनी वैश्यको उसके कुटुम्बियोंने घरसे निकाल दिया। उसने भी देवीकी महिमा श्रवण कर उनकी आराधना की। और देवीने कृपाकर निराश-चित्त समाधि वैश्यको ज्ञान प्राप्त होनेका वरदान दिया था।

श्रीरामचन्द्र और दुर्गापूजा (?)

यों तो चैत्रशुक्ल-पक्षके प्रथम नौदिनों तक दुर्गा पूजन का समय है; किन्तु आधुनिक दुर्गापूजा आश्विन मासकी शुक्ला सप्तमीसे नवमी तक खूब समारोहके साथ बंगालमें मनायी जाती है। बंगालकी देखी-देखी आजकल सारे भारतमें भी इस आधुनिक-पूजाका प्रचार हो गया है। बहुतोंकी धारणा है—श्रीरामचन्द्रजीने रावणपर विजय प्राप्त करनेके लिये शरत्कालमें महामाया दुर्गादेवीका पूजन किया था और देवीकी कृपासे दशमीके दिन रावणको मारा था। इसीलिये आश्विन मासकी शुक्ला दशमीको विजया--दशमी कहते हैं।' परन्तु उनकी यह धारणा सम्पूर्ण भ्रामक है। क्योंकि मूल वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण आदि किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। उक्त अर्वाचीन मतका प्रचार एक अत्यन्त आधुनिक और कल्पित उपपुराण—कालिका-पुराणसे तथा कीर्त्तिवास नामक एक कट्टर शाक्तके स्वकपोलकल्पित बंगला रामायणसे प्रारम्भ हुआ है। वाल्मीकि रामायणसे उपर्युक्त मतकी असत्यता सम्पूर्णरूपेण प्रमाणित होती है।

श्रीरामचन्द्रजीको योग्य जानकर तथा प्रजाओं के अनुरोधसे महाराज दसरथ उन्हें युवराज बनानेकी घोषणा करते हैं—

'चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पित कानन:।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्पताम्॥
श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः॥
(अयोध्या काण्ड सर्ग ३-४)

—'इस श्रेष्ठ और पवित्र चैत्र मासमें जब कि वन-उपवन सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे बड़े ही मनोहर हो रहे हैं-श्रीरामचन्द्रका यौवराज्य-पद पर अभिषेक करनेकी तैयारियाँ कीजिए। कल (अगले दिन) पुष्या नक्षत्रमें ही उनका युवराज-पद पर अभिषेक किया जायगा।'

परन्तु होना तो कुछ और था, दूसरे दिन रामको १४ वर्षका वनवास मिलता है और वे वनमें चले भी जाते हैं। भरत उनको लौटा लानेके लिये वनमें जाते हैं, परन्तु श्रीरामचन्द्रकी दृढ़ता और सुयुक्तियोंसे वे अन्त तक श्रीरामकी पादुका मस्तक पर धारण कर अयोध्या लौटनेके लिये विवश होते हैं। किन्तु लौटते समय एक कठोर प्रतिज्ञा भी करते जाते हैं—'हे रघु-नन्दन! मैं समस्त राज कार्यको आपकी खड़ाउओंको अर्पण कर राज्यका प्रबन्ध करता रहूँगा, परन्तु जिस दिन चौदहवाँ वर्ष पूरा होगा, उस दिन भी यदि आपको अयोध्यामें न देखा, तो मैं अग्निमें जल कर भस्म हो जाऊँगा।'

अस्तु, रामको चौदह वर्ष पूरे होनेके दिन ही अयोध्या लौटना निश्चित था। जिस दिन उनको युवराज बनना था, उसी दिन उनका वनवास आरम्भ हुआ था। अर्थात् चैत्र मासके शुक्लपक्षकी पुष्या-नक्षत्रमें उनका वनवास हुआ था। अतः चैत्र मास

में ही रावणका वधकर चैत्रमासमें ही वे अयोध्या लौटे थे—इसमें दो मत नहीं हो सकता। युद्धकाण्ड-से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि चैत्र कृष्ण-चतुर्दशीको युद्ध समाप्त हुआ था। युद्ध समाप्तिका तात्पर्य रावण वधसे है। रावणको मार कर, विभिषणको लङ्काके राज्यसिंहासन पर अभिषेक करके ही श्रीरामचन्द्र चैत्रमासमें शुक्लपक्षकी पुष्यामें नक्षत्रमें अयोध्या लौटे थे। अतः रावण-वध चैत महीनेमें हुआ था, न कि आश्विन मासमें। दूसरी बात, वाल्मीकि रामायणमें श्रीराम द्वारा दुर्गा पूजाका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं हैं। अतः श्रीरामचन्द्रके द्वारा आश्विन मासमें देवीकी पूजा तथा आश्विन मासकी शुक्ला-दशमीके दिन रावण-वधकी बात सम्पूर्ण असत्य, अप्रामाणिक और कपोल-कल्पित है। यह बङ्गालके शाक्तकवि 'कृतिवास' की देन है।

कृतिवास एक प्रधान शाक्तकवि थे। उन्होंने भोली-भाली अज्ञ जनतामें शाक्तमतका प्रचार करने-के उद्देश्यसे उनके अतिशय आदरणीय रामचरित्रको स्वकपोल-कल्पित भावोंके साँचेमें ढाल कर उनके सामने रखा। उन्होंने सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीरामके द्वारा उनकी त्रिगुणात्मिका माया—दुर्गादेवीका पूजन कराया है अर्थात् दूसरे रूपमें श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा भी दुर्गाकी श्रेष्ठता स्थापन करनेका प्रयत्न किया है।

महामाया—दुर्गा भगवान्की बहिरंगा शक्ति हैं। जीवोंको मोहित कर संसार कारागारमें आबद्ध करना ही उनका कार्य है। उनका यह कार्य भगवान्को अच्छा नहीं लगता—वे स्वयं इसे अनुभव करती हैं। इसीलिये वे भगवान्के सामने आनेमें भी लज्जा बोध करती हैं—

> विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
> विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥
>
> (श्रीमद्भा० २।५।१३)

अतएव जो शक्ति भगवान्के सम्मुख आने तकमें भी लज्जा बोध करती है, उस शक्तिकी भगवान्के द्वारा पूजा कहाँ तक सम्भव हो सकती है? विशेषतः, दासी अपने स्वामीकी पूजा—स्त्री अपने पतिकी पूजा कैसे अङ्गीकार कर सकती है? अतः श्रीराम द्वारा दुर्गा-पूजाकी बात प्रामाणिक होना तो दूर रहे, युक्ति-सङ्गत भी नहीं ठहरती।

चण्डीमें दुर्गाका स्वरूप

चण्डीमें शक्तिको खूब बढ़ा-चढ़ा कर दिखलाया गया है। परन्तु इन अतिशयोक्तियोंसे मायामुग्ध जीव ही भ्रान्त हो सकते हैं, यथार्थ सिद्धान्तविद् तत्त्वज्ञानी व्यक्ति इन वचनोंको 'छलना' ही मानते हैं। चण्डीमें ऐसा कहा गया है कि हरिहर आदि भी अज्ञानताकी अधिकताके कारण देवीको तत्त्वसे जाननेमें असमर्थ हैं—

> 'न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।'

किन्तु किसी प्राचीन विद्वान्ने इस श्लोककी टीका-में 'हरि' शब्दका अर्थ 'इन्द्र' लिया है। दूसरी बात यह कि पद्मपुराण, नारदपञ्चरात्र आदि शास्त्रोंमें ऐसा देखा जाता है कि पार्वतीदेवी एक अज्ञानीकी तरह महादेवसे तत्त्वकी जिज्ञासा कर निरन्तर श्रवण करती हैं। अतः जो शिव जगद्गुरु हैं—सम्पूर्ण वैष्णव जगत्के गुरु हैं, वे अपनी शक्तिके सम्बन्धमें अज्ञ है, यह कहाँ तक सम्भव है—विचारणीय है। इसका प्रकृत सिद्धान्त यही हो सकता है कि भगवान् व्यास-देवने राजसिक स्वभाववाले जीवोंकी क्रमोन्नतिके लिये ऐसा लिखा है। उन्होंने सात्त्विक, राजसिक और तामसिक स्वभाववाले त्रिविध प्रकारके लोगोंके कल्याणके लिये सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—त्रिविध प्रकारके पुराण लिखे हैं। सात्त्विक स्वभाव वाले व्यक्तियोंकी सात्त्विक पुराणोंके प्रति रुचि होना स्वाभाविक है। उसी प्रकार राजसिक स्वभाववालों-का राजसिक पुराणोंके प्रति तथा तामसिक स्वभाव-वालोंका तामसिक पुराणोंके प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक है। अतः राजसिक स्वभाव वाले व्यक्तियों-का राजसिक पुराणान्तर्गत चण्डीके प्रति श्रद्धालु होना स्वाभाविक ही है। गीतामें रजोगुणका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णा सङ्ग समुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्म सङ्गेन देहिनाम् ॥
(गीता १४।७)

रजोगुण-रागात्मक होता है । राग = अनुराग या आसक्ति । इसके प्रभावसे जीव इस शरीर और स्त्री-पुत्र परिवार-धनमें 'मैं और मेरा' का मिथ्या अभिमान करने लगता है । इस मिथ्या अभिमान और कर्तापनके अभिमानसे उसमें भोग वासना पैदा होती है । इसीलिए संसारी जीव महामायाकी पूजा कर उन्हें संतुष्ट कर—'रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो देहि, सौभाग्यं देहि, पत्नी मनोरमां देहि'—इत्यादि देहि-देहिका वरदान माँगता है; संसारसे मुक्त होनेका वर नहीं माँगता । मुक्ति माँगे भी तो कैसे ? देवी तो सांसारिक सम्पदाएँ तक ही देती है । राजा सुरथने दुर्गाकी आराधना द्वारा अनित्य राज्य-सुख ही तो प्राप्त किया था । दुर्गाने किसीको मुक्ति प्रदान की हो—ऐसा कहीं नहीं सुना जाता ।

त्रिगुणात्मिका मायाके अधीनस्थ जीव जागतिक विषय-भोग आदि अनित्य सुखोंकी ही कामना करता है । इसीलिए वह त्रिगुणात्मिका मायाके प्रति ही श्रद्धालु हुआ करता है । गीताके अनुसार त्रिगुणको पार करने पर ही जन्म-मरण जरा आदि दुःखोंसे मुक्त होकर जीव अमृतका अधिकारी होता है । यही जीवोंके लिये चरम प्राप्य अर्थात् प्रयोजन है ।

शक्ति-पूजा और ब्राह्मण

एक बात और भी विचारणीय है:—चण्डीमें क्षत्रियों और वैश्योंके द्वारा ही दुर्गा-पूजाका विधान देखा जाता है । परन्तु ब्रह्मज्ञ व्यक्ति अर्थात् ब्राह्मण गण एक मात्र भगवान्‌की ही आराधना करेंगे । वे अन्यान्य देव-देवी, भूत-प्रेत पिशाच, यक्ष और गन्धर्वोंकी आराधना पूजा नहीं करेंगे । इसका शास्त्रीय प्रमाण है—

'ब्राह्मणोऽपि मुनिर्ज्ञानी देवमन्यं न पूजयेत् ।
मोहेन कुरुते यस्तु सद्यश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥
सदान्यदेवता भक्तिर्ब्राह्मणानां गरीयसी ।
विदूरयति विप्रत्वं चाण्डालत्वं प्रयच्छति ॥
(नारदीय पुराण)

तात्पर्य यह कि सतत् मननशील मुनि अथवा सत्-असत् विवेकयुक्त ब्राह्मण एक मात्र भगवान् श्रीहरिके अतिरिक्त अन्यान्य देव देवियोंकी पूजा न करेंगे । यदि मोहके वशमें होकर भी वे ऐसा करेंगे तो वे पुनः चाण्डालत्वको प्राप्त हो जायेंगे । अतः देवी पूजा अत्यन्त प्रशंसनीय होने पर भी ब्राह्मणोंके द्वारा करणीय नहीं है; क्योंकि इससे उनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है और वह चाण्डाल हो पड़ता है ।

केवल शक्ति द्वारा जगत्-सृष्टि असंभव है

कोई-कोई प्रकृतिको (दुर्गाको) सृष्टि-स्थिति और प्रलय आदि कार्योंका मूलकारण मानते हैं । परन्तु वेदान्त सूत्रमें इस मतका सम्पूर्ण रूपसे खण्डन किया गया है—'उत्पत्त्यासंभवात्' (२।२।४३) सूत्रकी, गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण महोदयने जो टीकाकी है, उसका तात्पर्य यह है कि शक्तिवाद वेद-विरुद्ध मत है । क्योंकि केवल शक्ति द्वारा सृष्टि आदि कार्य असंभव हैं । पुरुष-संसर्गके बिना अकेली स्त्री सन्तान उत्पन्न करनेमें असमर्थ है । पुरुष द्वारा अनुगृहीत शक्ति संसारकी कर्त्री है—ऐसा कथन भी दोषसे रहित नहीं है । क्योंकि ब्रह्मसे ही जगत्‌की उत्पत्ति सुनी जाती है ।

आधुनिक दुर्गा-पूजाका इतिहास

दुर्गा-पूजाका यथार्थ समय चैत्र मास है । परन्तु आधुनिक दुर्गा-पूजा आश्विन मासमें होती है, जो बंगालसे प्रचलित होकर सारे भारतमें फैल गयी है । इस आधुनिक दुर्गा पूजाकी एक कहानी है— मुगल सम्राटके राजत्वकालमें बंगालके राजशाही जिलाके अन्तर्गत ताहिरपुरके राजा कंसनारायण बंगालके सूबेदार और दीवान थे । एक बार उसने बंगालके समस्त बड़े बड़े स्मार्त पण्डितोंको बुलाकर उनसे कोई महायज्ञ करनेकी व्यवस्था देनेकी अनुमति माँगी । उस समय नाटोरके निकटवर्ती वासदेवपुरके श्रीरमेश शास्त्री राजपुरोहित थे । वे उस समय बंगाल और

बिहारके सर्व-प्रधान पण्डित माने जाते थे। उन्होंने राजासे कहा—'विश्वजित, राजसूय, अश्वमेध और गोमेध—इन चार यज्ञोंको महायज्ञ कहा जाता है। विश्वजित और राजसूय यज्ञ करनेका यथार्थ अधिकारी सार्वभौम राजा है तथा अश्वमेध और गोमेध कलियुगमें निषिद्ध हैं। दूसरी बात यह है कि इन यज्ञोंको करनेका अधिकार केवलमात्र क्षत्रिय राजा को ही है। आप ब्राह्मण हैं। अतः इन यज्ञों का अनुष्ठान करना आपका कर्त्तव्य नहीं है। प्राचीन कालमें राजा सुरथने दुर्गादेवीकी आराधना करके अपना मनोवांछित फल प्राप्त किया था। इसलिए आप भी इस शरतकालमें ही दुर्गादेवीका पूजन करें। इससे आपकी मनोकामना—स्वर्गादि प्राप्तिकी कामना पूर्ण होगी।' तदनुसार राजाने सन् १५८० ई० में बहुतसा धन खर्चकर असमयमें ही—चैत्रमास के बदले आश्विन मासमें ही दुर्गाका पूजन किया। इसीलिए इसे 'अकाल बोधन' भी कहा जाता है धीरे-धीरे यह अधुनिकी दुर्गापूजा सारे बंगालमें और बंगालसे सारे भारतमें फैल गयी। इस आधुनिकी दुर्गापूजाके आदि प्रवर्त्तक रमेश शास्त्री है, इसे शास्त्रानुमोदित या प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

श्रीश्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाका विराट आयोजन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला, मथुरा (उ. प्र.)
१५ अक्टूबर १९५७

प्रिय महानुभाव,

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति इस वर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ में आगामी २१ अश्विन, ८ अक्टूबर, मंगलवार से श्रीउर्जव्रत (कार्त्तिक-व्रत) का पालन कर रही है। इसके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा का विराट आयोजन किया गया है। समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य—परमहंस-मुकुटमणि परिव्राजकाचार्यवर १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज जी बहुतसे साधु-सन्तों, भक्तों और सज्जन-मण्डलीके साथ गया, काशी और प्रयाग आदि तीर्थवरों से होते हुए १३ अक्टूबरको मथुरा पधारे हैं। प्रतिदिन श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंके प्रवचन, संकीर्तन, वेद-वेदान्त और पुराणोंके पारंगत बड़े-बड़े विद्वानों और संतोंके भाषण तथा धाम-परिक्रमाका सुन्दर कार्य-क्रम चल रहा है, जो २१ कार्त्तिक, ७ नवम्बर तक चालू रहेगा।

प्रार्थना है, आप इष्ट मित्रों तथा बन्धुजनोंके साथ यहाँ प्रतिदिन पधार कर अथवा पूर्णरूपेण योगदान कर भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदकः—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

※ दैनिक कार्य-क्रम ※

उषाकालमें — मंगलारति, कीर्त्तन।
प्रातःकालमें — प्रवचन और व्याख्या।
पूर्वाह्णमें — परिक्रमा, नगर-कीर्तन।
मध्याह्नमें — भोग आरति।
अपराह्णमें — परिक्रमा, हरिकथा आदि सत्संग।
संध्यामें — संध्यारति, प्रवचन, भाषण, कीर्तन (९ बजे रात तक) छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीगौर और श्रीरामलीला-प्रदर्शन।

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ४, पृष्ठ ८८ से आगे]

योग-दर्शनके इस प्रथम सूत्रके 'अथ'—शब्द द्वारा मङ्गलाचरणको ही लक्ष्य किया गया है; क्योंकि वाचस्पति मिश्रकी टीकासे यह स्पष्ट हो जाता है—"अथेप ज्योतिरितिवत्', नत्वानन्तर्यार्थः। × × अधिकारार्थस्य चाऽथशब्दस्याऽन्यार्थं नीयमानोद-कुम्भदर्शनमिव श्रवणं मङ्गलायोपकल्पते इति मन्त-व्यम्॥" कणाद द्वारा रचित वैशेषिक दर्शनके प्रथम सूत्र—"अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" में तथा जैमिनीकृत पूर्वमीमांसाके प्रथम सूत्र—"अथातो धर्म-जिज्ञासा" में 'अथ' शब्द द्वारा मङ्गलाचरणको ही लक्ष्य किया गया है। सर्वोपरि कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास कृत उत्तरमीमांसा अथवा वेदान्त-दर्शनके प्रथम सूत्र—"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" के 'अथ'—शब्दका अर्थ सभी आचार्योंने मङ्गलाचरणके रूपमें ही ग्रहण किया है। ब्रह्मसूत्र 'सम्बन्ध-ज्ञान' के दाता हैं। शाण्डिल्य-सूत्र 'अभिधेय-तत्त्व' प्रकाशक ग्रन्थ है तथा नारदका भक्ति-सूत्र 'प्रयोजन-तत्त्व*' का विकाशक-ग्रन्थ है। शाण्डिल्य-सूत्रका प्रथम-सूत्र है—"अथातो भक्ति जिज्ञासा।" और नारदके भक्ति-सूत्रका प्रथम सूत्र है—"अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः" इन दोनों सूत्रोंके 'अथ' शब्द मङ्गलाचरणको ही लक्ष्य करते हैं। प्रसिद्ध वैयाकरणिक पाणिनी ऋषिने पाणिनी व्याकरणके प्रथम सूत्र—"अथ शब्दानुशा-सनम्।" में 'अथ' शब्दका ही प्रयोग किया है। अतः देखा जाता है कि सूत्रकारोंने भी अपने-अपने सिद्धान्तोंको अत्यन्त संक्षेपमें (सूत्राकारमें) वर्णन करते समय अपने हृदयके गम्भीर भावोंको 'अथ'—शब्द द्वारा मङ्गलाचरणके रूपमें व्यक्त किया है। इससे यह सूचित होता है कि ग्रन्थके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण नितान्त आवश्यक है।

कातन्त्रमें 'नमस्कार-विवेकः'

कातन्त्रके रचयिताने 'अथ'—शब्दद्वारा मङ्गला-चरण न करके भी 'सिद्धि' शब्दसे मंगलाचरण किया है। कातन्त्र अर्थात् कलाप-व्याकरणके टीकाकारोंने उक्त 'सिद्धि' शब्दके ऊपर अनेक प्रकारकी टीकाएँ लिखी हैं। इन टीकाओंमें त्रिलोचन कृत 'पञ्जिका' टीका और अन्नदा तर्क-चूड़ामणि-कृत 'कौमुदी-टीका' विशेष उल्लेख योग्य हैं। इन लोगोंने मङ्गलाचरणके सम्बन्धमें अनेकों पूर्व-पक्ष उठाकर उन सबकी सुन्दर-रूपमें मीमांसा की है। हम सुन्दरानन्द विद्याविनोद महाशयको उसे पढ़नेके लिये अनुरोध करते हैं। उन-लोगोंकी वह समालोचना कलाप-व्याकरणके मूल-ग्रन्थके साथ मुद्रित रहने पर भी पृथक्-रूपमें 'नमस्कार-विवेकः' नामसे १३०६ बङ्गाब्दमें ईश्वरचन्द्र तर्क-वागिश द्वारा प्रकाशित हुई है। उसे पढ़नेसे पता चलता है कि विधिपूर्वक मङ्गलाचरण न किये जाने से ग्रन्थमें अनेकों त्रुटियाँ रह जाती हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कातन्त्रकी 'पञ्जिका-वृत्ति' व्याख्या

---

*गौड़ीय वैष्णव भक्तिको अभिधेय और प्रयोजन दोनों मानते हैं। शाण्डिल्यके 'भक्ति-सूत्र' में अभिधेय-तत्त्व-का विचार है और नारदके 'भक्ति-सूत्र' में प्रयोजन-तत्त्वका विवेचन है। नारद मुनिने अपने भक्ति-सूत्रके द्वितीय-सूत्रमें लिखा है—"सा त्वस्मिन् परम-प्रेमरूपा।" तृतीय-सूत्र इस प्रकार है—"अमृत-स्वरूपा च।" इससे यह विदित होता है कि नारद द्वारा कही गयी भक्ति प्रेमरूप, अमृत-स्वरूप प्रयोजन-तत्त्वकी संस्थापिका है।

और 'कौमुदी-टीका' के विचारोंके अनुसार विद्या विनोद महाशयके ग्रन्थमें अनेकों भ्रमपूर्ण सिद्धान्त लिखे गये हैं।

मङ्गलाचरणके सम्बन्धमें दयानन्दके विचारोंका खण्डन

वास्तवमें वेद-उपनिषद् अथवा सूत्रकारोंके अतिरिक्त अन्य किसीके लिये भी 'ॐ' या 'अथ' शब्द द्वारा मङ्गलाचरण करना स्वीकृत नहीं हो सकता। हम दयानन्द सरस्वतीके 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रन्थमें देख पाते हैं—'अथ' और 'ॐ' इन दो शब्दों-अतिरिक्त अन्य किसी भी श्लोक, वाक्य या छन्दों द्वारा मङ्गलाचरण करना वैदिक-विधान नहीं है।' हम उनके इस मतको नास्तिकताकी प्रतिमूर्त्ति स्वरूप तत्त्वज्ञानसे रहित एक अशुद्ध विचार मानते हैं। सूत्रमें चित्तके आवेगको संकुचित करके गम्भीर और विस्तृत तत्त्वोंको थोड़ेसे अक्षरोंमें व्यक्त किया जाता है।* सुतरां हृदयके सम्पूर्ण आवेगको श्लोकोंके रूपमें लिपिबद्ध कर अपने इष्टदेवके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण को यदि मङ्गलाचरण न माना जाय, तो मङ्गलाचरण किसे कहेंगे? स्वामी दयानन्दका उक्त विचार अत्यन्त हास्यास्पद और सर्वतोभावेन उपेक्षणीय है। क्योंकि वेद और उपनिषदोंमें केवलमात्र 'ॐ' शब्दका उच्चारण करके ही मङ्गलाचरण करना चाहिये—ऐसा कहीं भी विधान नहीं है। सूत्रकारोंने अपने वक्तव्य विषयोंको अत्यन्त संक्षेपमें लिखा है, अतः उन्होंने अपने मङ्गलाचरणको भी संक्षेपमें 'अथ' शब्दसे ही व्यक्त किया है।

हमारे विद्याविनोद महाशय शायद यह दलील पेश करेंगे कि मंगलाचरणका शिष्टाचार सर्वत्र दिखलाना ही होगा—इसका प्रमाण क्या है? स्वामी दयानन्द जैसा श्रीविग्रह विरोधी नास्तिक व्यक्ति भी किसी-न-किसी रूपमें मंगलाचरण रूप शिष्टाचार स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुआ है। सुबोधबाबू ऐसा सोच सकते हैं कि यद्यपि मंगलाचरण करनेकी नीति अत्यन्त प्राचीन कालसे चली आ रही है तथापि प्रमाणके अभावमें यदि इस पद्धतिका पालन न किया जाय, तो कोई दोष नहीं है। ऐसा अनुमानका कारण यह है कि प्राचीन कालसे अबतकके सभी आचार्य हरिनाम महामन्त्रका संख्यापूर्वक जप और असंख्यात रूपमें कीर्तन करते आये हैं, परन्तु साहाबाबूने प्रमाणके अभावमें महामंत्रको असंख्यात रूपमें कीर्तन करना अवैध बतलाकर 'श्रीनाम' के चरणोंमें अपराधी हैं। हम 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'— ग्रन्थमें विद्याविनोद नामक कुलाङ्गार द्वारा लिखे गये नामापराधमूलक विचारोंका शास्त्रीय प्रमाण और युक्तियोंके आधार पर खण्डन करेंगे। जो लोग सोलह नाम अथवा बत्तीस अक्षरों वाले महामंत्रका असंख्यात कर्तन नहीं करते, वे नामापराधी और पाखण्डी हैं।

मंगलाचरणके सम्बन्धमें सांख्य-दर्शन

शिष्टाचारके सम्बन्धमें हम कपिलके सांख्य-दर्शन का प्रमाण देख पाते हैं—

"मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्" फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ॥

(सांख्यदर्शन ५। १)

अर्थात् शिष्टाचार, फलदर्शन, और श्रौत-व्यवहारके हेतु मंगलाचरण करना कर्त्तव्य स्थिर किया गया है।

सांख्यकारके उक्त सूत्रमें मंगलाचरणकी पद्धतिको अस्वीकार नहीं किया गया है। प्रथम सूत्रके 'अथ' शब्दकी टीकामें विज्ञान भिक्षुने भी इस प्रकार लिखा है— 'मंगलाचरणं शिष्टाचारात् इति पञ्चमाध्याये वक्ष्यति'। इससे स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि ग्रन्थके आरंभमें मङ्गलाचरण अवश्य आचरणीय है।

---

* स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखं।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

रामनारायण विद्यारत्न द्वारा बरहमपुरसे प्रकाशित हरिनामामृत-व्याकरणके ४२ नम्बर सूत्रकी टीकासे उद्धृत मुग्धबोध-व्याकरणके टीकाकार दुर्गादासकृत श्लोक।

विद्याविनोदजी शायद यह सोचेंगे कि कपिलका सांख्य तो योग-शास्त्र है; अतः हम वैष्णव उसकी प्रामाणिकताको माननेके लिये बाध्य नहीं हैं। परन्तु ऐसा कहनेसे काम नहीं चलने का है। सम्पूर्ण दार्शनिक जगत्में सांख्य-दर्शनको सबसे प्राचीन माना गया है— इसमें दो मत नहीं है। तथा भौतिक जगत् की सृष्टि सम्बन्धी सांख्यके विचारोंका श्रीव्यासदेवने भी अपने वेदान्तसूत्र में विरोध नहीं किया है। यद्यपि व्यासदेवने सांख्यकी निरीश्वर विचारधारा और उसके साध्य-साधन तत्त्वका प्रबल खण्डन किया है, तथापि उसके 'मंगलाचरणं शिष्टाचारात्' (सां० ५ । १)— इस वाक्यकी प्रामाणिकताका किसी प्रकार उल्लंघन नहीं किया है। कौन कह सकता है कि ये उपरोक्त शब्द ईश्वरके शक्त्यावेशावतार देवहूति-नन्दन कपिलदेवके न हों? आचार्य विज्ञान भिक्षुके अनुसार (क) देवहूति-नन्दन कपिल ही सांख्य-सूत्रके प्रणेता हैं। सांख्य-सूत्रमें पहले कुल २२ सूत्र थे। अग्निके अवतार कपिलने पीछेसे उन सूत्रोंको बढ़ा कर छः अध्यायोंमें लिख दिया है, जिसे सांख्य-प्रवचन कहते हैं। वही सांख्य-प्रवचन आधुनिक युगमें सांख्यदर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। विज्ञान भिक्षुकाका कथन है कि सांख्य-प्रवचन में मूल सूत्रोंकी संख्या २२ है। अतएव 'मङ्गलाचरण शिष्टाचारात्'— इस सूत्रके रचयिता साक्षात् विष्णुके अवतार देवहूति-नन्दन कपिलदेव जी ही हैं।

विज्ञान भिक्षुकी बात अलग रहे, शून्यवादी गौड़पादकी ही बात लीजिए, ये एक सांख्य योगके अति प्राचीन और प्रख्यात आचार्य थे। इन्होंने अपने सांख्य भाष्यके आरम्भमें ही कपिलदेवको ब्रह्माके सात पुत्रोंमें एक माना है (ख)। × यदि युक्तिके लिये गौड़पादकी इस बातको मान लिया तो ब्रह्माके पुत्र कपिल ही सांख्य-दर्शन के रचयिता होते हैं तथा ये कपिल विज्ञान भिक्षुके देवहूति-पुत्र कपिल या अग्निके अवतार कपिलसे सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। यदि कपिलको ब्रह्माका पुत्र माना जाय, तब तो ब्रह्म-सम्प्रदायके लोग उनके वचनोंको मान लेने में विशेष आपत्ति न करेंगे। अतएव कोई भी कपिल क्यों न हों, उनकी बातें भगवद्-भजनके अनुकूल होने पर स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

श्रीमद्भागवतमें शिष्टाचार

इन सब विचारोंको छोड़ देने पर भी हम श्रीमद्-भागवतके विचारोंको माननेके लिए बाध्य हैं। स्वयं व्यासदेवने भी वेदान्त सूत्रमें 'अथ'— शब्द द्वारा तथा श्रीमद्भागवतमें जन्माद्यस्य श्लोक द्वारा मङ्गलाचरण किये हैं। उन्होंने स्वयं तो मङ्गलाचरण किया ही है, दूसरोंके लिये भी इसे एक आवश्यक विधि बतलाया है—

(क) "शास्त्र-मुख्यार्थ-विस्तारस्तन्त्राख्येऽनुक्तपूर्वकः। षष्ठाध्याये कृतः पश्चाद्वाक्यार्थश्चोपसंहृतः॥" तदिदं सांख्य-शास्त्रं कपिल-मूर्तिर्भगवान् विष्णुरखिल-लोक हिताय प्रकाशितवान्। यत् तत्र वेदान्तिन्न्यः कश्चिदाहः —सांख्य-प्रणेता कपिलो न विष्णुः। किन्त्वग्न्यवतारः कपिलान्तरम्—"अग्नि स कपिलो नाम सांख्यशास्त्रप्रवर्तकः।" इति (महाभारत) स्मृतेरिति तल्लोक-व्यामोहन-मात्रम्। "एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात्। प्रसंख्यानाय तत्त्वानां सम्मतायात्मदर्शने॥" इत्यादि (भागवत ३। २४। ३६) स्मृतिषु विष्ण्वावतारस्य देवहूति-पुत्रस्यैव सांख्योपदेष्टृत्वावगमात्। कपिलद्वय कल्पनागौरवाच्च। तत्र चाग्नि-शब्दोऽन्याख्यशक्त्यावेशादेव प्रयुक्तः। तथा—'कालोऽस्मि लोक-क्षयकृत् प्रवृद्धः।' इति (गीता ११। ३२) श्रीकृष्णवाक्ये काल-शक्त्यावेशादेव काल-शब्दः। अन्यथा विश्वरूप प्रदर्शक-कृष्णस्यापि विष्ण्वावतार-कृष्णाद्भेदापत्तेरितिदिक्॥ (सा. भा.-६।१०)

(ख) इह भगवान् ब्रह्मसूनः कपिलो नाम। तद्यथा—सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः। कपिलश्चासुरिश्चैव बोढुं पञ्चशिखस्तथा। अन्य इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः सप्त प्रोक्ता महर्षयः॥"

(सांख्य-दर्शनम्—कालीवर वेदान्तवागीश-कृत उपोद्घात पृष्ठ २, संस्करण-५)

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
(श्रीमद्भा० १।२।४)

अर्थात् इस शास्त्रके अधिष्ठातृ देवता नारायण, पुरुषोत्तम नर ऋषि नामक भगवदवतार, सरस्वती-रूपी पराविद्यादेवी और श्रीव्यासदेवजीको नमस्कार करके, तब संसारको जय करनेवाले इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थका पाठ करना चाहिये ।

—(४३७ श्रीचैतन्याब्दमें अनन्त वासुदेव द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भागवतसे)

उक्त श्लोकसे यह सूचित होता है कि सबसे पहले पूज्य-तत्त्वको नमस्कार करना ही विधि है । उसके पश्चात् संसार पर विजय प्राप्त करनेके लिये जयगान करके ही उपदेशपूर्ण ग्रन्थोंको आरम्भ करना चाहिये । इस प्रसङ्गमें हम श्रीधर स्वामीपादकी टीकाका उल्लेख कर रहे हैं—'जयत्यनेन संसारमिति जयो ग्रन्थस्तम् उदीरयेत् इति स्वयं तथोदीरयन् अन्यानपि पौराणिकानुपशिक्षयति ।' व्यासदेवजीने बद्धजीवोंके लिये संसारको जय करनेके लिये स्वयं श्रीमद्भागवत-ग्रन्थकी रचना करते समय उपास्य-वर्गको नमस्कार करनेकी विधि दी है । केवल यही नहीं, 'अन्यानपि पौराणिकान् उपशिक्षयति'—अर्थात् श्रीधर स्वामीके इस वाक्यसे यह सूचित होता है कि अन्यान्य पौराणिकोंको भी इन्हें नमस्कार करके ही 'जय-ग्रन्थों' की रचना करनी चाहिये । यद्यपि श्रीधर स्वामीपाद गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके पूर्वाचार्य नहीं हैं एवं उनके विचार और सिद्धान्त श्रीगौड़ीय वैष्णवोंसे बहुत कुछ भिन्न हैं, तथापि श्रीमद्भागवतके एक प्रकारसे आदि टीकाकार होनेके कारण सबने इनको अत्यन्त सम्मान दिया है । विशेषतः विद्याविनोद महाशयने अपने अचिन्त्यभेदाभेदवाद ग्रन्थमें श्रीमन्महाप्रभुको श्रीधरस्वामीके सम्प्रदायके अन्तर्भूत प्रमाणित करनेका पूरा प्रयत्न किया है । इसलिये मैं यहाँ पर श्रीधरस्वामीकी उक्ति उद्धृत कर साहाबाबूकी शिष्टाचार-विरोधिता दिखलानेके लिये बाध्य हो रहा हूँ । उक्त श्लोकके 'ततोजयमुदीरयेत्'—वाक्यमें नमस्कारके अन्तमें 'जय' उच्चारण करना चाहिये । ऐसा अर्थ ग्रहण करनेसे विद्याविनोद महाशयके 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः' वाक्यका प्रयोग श्रीधर स्वामीपादके अर्थोंमें नहीं हुआ है । 'जय'—शब्द द्वारा संसारको विजय प्राप्त करनेवाले ग्रन्थोंका ही लक्ष्य होता है; तब 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'—ग्रन्थ संसारको जय करनेके लिये नहीं लिखा गया—ऐसा समझना होगा ।

प्रसंगवश विद्याविनोद महाशयके एक स्वभावका परिचय दे रहा हूँ । उन्होंने अपने भिन्न-भिन्न ग्रन्थोंमें बहुतसे परस्पर विरोधी सिद्धान्त लिखे हैं । उनसे इसका कारण पूछे जानेपर वे उत्तर दिया करते हैं—'मैं यन्त्रचालक नहीं, यंत्र हूँ ।' तात्पर्य यह कि वे जब जिस यंत्रचालककी अधीनता स्वीकार करते हैं, तब उसी यंत्रचालकके वेतन-भोगी नौकरकी तरह उसकी इच्छानुरूप सम्पूर्ण-विरुद्ध मतवाद प्रकाश करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते । हम पीछे ग्रन्थ-समालोचनाके प्रसङ्गमें इस विषयकी विशेष रूपमें समालोचना करेंगे । परन्तु यहाँ हमलोग यह पूछना चाहते हैं कि उनके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' ग्रन्थके यंत्री कौन हैं ? क्या वे (यंत्री महोदय) संसार पर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण ही श्रीगुरुदेवको तथा संन्यासको छोड़ कर पुनः गृही बने हुए हैं और स्वयं विद्याविनोद महाशय भी बंताशी (पतित संन्यासी जो पुनः विवाह आदि कर घर बसा लेता है) बन कर गृहस्थ जीवन बिता रहे हैं । ऐसी दशामें उनके ग्रन्थ संसारको विजय करनेवाले ग्रन्थ कैसे हो सकते हैं ? वे तो भवकूपमें पड़े हुए मंडूक (मेढ़क) की तरह नित्य-बद्ध दशाको बढ़ानेवाले ग्रन्थ ही हो सकते हैं । सुतरां विद्याविनोद महाशयके ग्रन्थोंमें श्रीधरस्वामीपादके "संसारमिति जयो ग्रन्थम् उदीरयेत" वाक्यकी कोई सार्थकता न तो रक्षित ही हुई है और न कभी हो ही सकती है ।

श्रीमद्भागवतके उक्त श्लोकमें 'जय'—शब्दसे संसारको विजय करनेवाले उपदेश पूर्ण ग्रन्थको लक्ष्य किया गया है और उदीरयेत्—शब्दसे उसके वाचन,

लिपिबद्धकरण या ग्रन्थित-करणका बोध होता है। अतः 'जय'-शब्दसे शास्त्रकर्त्ता पौराणिकोंकी शिक्षाओं-का भी बोध होता है। 'अन्यानपि'—स्वामीपादके इस पदसे दूसरे-दूसरे व्यक्तियोंको भी लक्ष्य किया गया है, जो किसी भी उपदेशमूलक ग्रन्थकी रचना करेंगे। सभी लोगोंको शास्त्रानुमोदित शिष्टाचारका पालन अवश्य करना चाहिये—यही श्रीधरस्वामी पादकी टीकाका तात्पर्य है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भी उक्त श्लोक-की टीकामें पूर्व-पूर्व टीकाकार आचार्योंकी तरह ग्रन्थ-लेखकोंके लिये एक सुस्पष्ट निर्देश दिया है। उन्होंने लिखा है—'गुरुं नत्वा देवतादीन् प्रणमति नारायणमिति।' विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका उपदेश यह है कि सबसे पहले गुरुदेवको नमस्कार करके तब उपास्य तत्त्वादिको प्रणाम करना चाहिये। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका अलग रूपमें कोई परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं समझता। ये समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत एक प्रकाण्ड विद्वान् थे। वैष्णवताकी दृष्टिसे हो अथवा सम्प्रदाय-के प्रधान रक्षककी दृष्टिसे हो गौड़ीय वैष्णव जगत्में इनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। विद्याविनोद महाशयने विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके 'गुरुं नत्वा'—उपदेशका उल्लंघन करके यदि कोई ग्रन्थ लिखा हो, तो उस ग्रन्थको सद्ग्रन्थ कदापि नहीं माना जा सकता है।

अतः देखा जाता है कि 'मङ्गलाचरणं शिष्टा-चारात्'—सांख्यकी इस नीतिका उल्लंघन स्वयं व्यासदेवजीने भी नहीं किया है। यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं भी श्रीमद्भागवतमें शिष्टाचार प्रदर्शन कर मङ्गलाचरणकी विधिका समर्थन किया है। इस विधिका उल्लंघन करनेका फल बुरा होता है। विद्या विनोद महाशयने अपने सब ग्रन्थोंमें तो मङ्गलाचरण किये हैं, परन्तु अपने 'वाद'—ग्रन्थमें अर्थात् 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'—ग्रन्थमें नहीं किये हैं। मालूम पड़ता है, इस ग्रन्थमें विशुद्ध वैष्णव-सिद्धान्तोंके प्रतिकूल सिद्धान्तोंको प्रकाशित होते देखकर दैवने ही मङ्गलाचरण करनेसे उन्हें रोक दिया है। आगे मैं इसे प्रमाणित करूँगा कि उनका यह ग्रन्थ सिद्धान्तोंके विरुद्ध है, गुरु-वैष्णवोंका विरोधी है, ऐतिह्यका विरोधी है, प्रमाणके विरुद्ध है; आचारके विरुद्ध है, लौकिकताका विरोधी है, गौड़ीय-धाराका विरोधी है, गोस्वामीवर्गका विरोधी है, श्रीचैतन्य-विरोधी है, सम्प्रदायका विरोधी है और श्रीनामका विरोधी है।

(क्रमशः)

जैवधर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ४, पृष्ठ ९९ से आगे]

एक दिन व्रजनाथ भागीरथीके किनारे एक निर्जन-स्थानमें बैठे-बैठे सोच रहे हैं—'यदि निमाई जैसा न्यायशास्त्रका प्रकांड विद्वान् न्यायका परित्याग कर भक्तिपथका अवलम्बन कर सकता है, तब हम लोगोंको ही वैसा करनेमें क्या दोष है? जब तक मैं न्यायके घेरेमें बन्द था, तब तक न तो भक्तिके साथ मेरा कोई सम्बन्ध था और न मैं निमाईका नाम ही जनता था। उस समय मुझे खाने, पीने और सोने के लिए भी समय न मिलता था। किन्तु अब तो सम्पूर्ण विपरीत देख पाता हूँ। अब न्यायशास्त्रके विषय स्मरण नहीं रहते, बल्कि सर्वदा 'गौराङ्ग' नाम ही स्मरण होता रहता है। वैष्णवोंके भावपूर्ण नृत्य अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। सब कुछ ठीक है, परन्तु मैं एक वैदिक ब्राह्मणकी संतान हूँ, कुलीन हूँ, तथा समाजमें सम्मानित व्यक्ति हूँ। मानता हूँ—वैष्णवोंके समस्त व्यवहार अच्छे हैं, किन्तु मुझे

उसमें प्रवेश करना उचित नहीं जान पड़ता। श्रीमायापुरके खोल-भाङ्गा-डाङ्गा तथा वैरागी-डाङ्गाके वैष्णवोंके दर्शनसे हृदय पवित्र हो जाता है। विशेष कर श्रीरघुनाथदास बाबाजीको देखनेसे हृदय श्रद्धासे भर जाता है। मन चाहता है—सर्वदा उनके निकट बैठकर भक्ति-शास्त्रका अनुशीलन करता रहूँ। वेद भी परमार्थ-तत्त्वका दर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासन करनेके लिए उपदेश करते हैं—

'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।
(बृ० आ० ४।५।६)

इस मन्त्रमें 'मन्तव्यः'—शब्दसे न्यायशास्त्रके अनुशीलन द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये उपदेश रहने पर भी 'श्रोतव्यः'—शब्दसे कुछ और विषयोंकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है। मैंने अपना बहुत सा समय वितर्कमें व्यर्थ ही गँवाया है। अब अधिक समय नष्ट न कर श्रीगौर हरिका भजन करना ही अच्छा है। आज शामके बाद श्रीरघुनाथदास बाबाजीका दर्शन करना श्रेयस्कर है।'

भगवान् अंशुमाली बड़ी तीव्र गतिसे पश्चिम क्षितिजकी ओर बढ़ रहे हैं। उनकी लाल लाल किरणें पृथ्वीतलको छोड़ वृक्षोंके शिखरोंमें खेल रही हैं। पक्षीगण भिन्न-भिन्न दिशाओंसे उड़-उड़कर अपने-अपने घोंसलों प्रवेश करने लगे। शीतल-मन्द समीर प्रवाहित होने लगा। धीरे-धीरे दो एक तारे भी आकाशमें दीख पड़ने लगे। इसी समय मायापुर श्रीवास अंगनमें भगवान्‌की संध्या-आरती आरंभ हुई। वैष्णवगण मधुर स्वरसे आरती-कीर्त्तन करने लगे। उसी समय व्रजनाथ धीरे-धीरे श्रीवास अंगनमें पहुँचे और वकुल वृक्षके नीचे चबूतरे पर बैठ गये। गौरहरिका आरती-कीर्त्तन सुनकर उनका चित्त अतिशय कोमल हो गया। आरती-कीर्त्तन समाप्त होनेपर वैष्णवगण उसी चबूतरेपर आकर क्रमशः बैठने लगे। वृद्ध रघुनाथदास बाबाजी भी 'जय शचीनन्दन', 'जय नित्यानन्द', 'जय रूप-सनातन', 'जय दासगोस्वामी' उच्चारण करते-करते उसी चबूतरे पर आकर बैठे। सबने उठकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। व्रजनाथ भी उन्हें प्रणाम किये बिना रह न सके। व्रजनाथके मुख-मण्डलका अपूर्व सौन्दर्य दर्शन कर बाबाजीने उन्हें गलेसे लगाकर अपने निकट बैठाया और पूछा— 'बेटा! तुम कौन हो?'

व्रजनाथने उत्तर दिया—'मैं एक तत्त्व-पिपासु हूँ। आपसे कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।'

पास ही बैठे एक वैष्णव व्रजनाथका परिचय जानते थे। उन्होंने कहा— 'इनका नाम व्रजनाथ न्याय-पञ्चरत्न है। सारे नवद्वीपमें इनके समान न्यायका विद्वान् और नहीं है। आजकल इनकी शचीनन्दनके प्रति कुछ श्रद्धा हुई है।'

व्रजनाथकी विद्वताकी बात सुनकर बाबाजीने बड़े ही नम्र शब्दोंमें कहा—'बाबा! तुम तो बड़े भारी विद्वान हो। हमलोग मूर्ख और अकिंचन हैं। तुम हमारे शचीनन्दनके धामवासी हो। हमलोग तुम्हारी कृपाके पात्र हैं। अतएव हमलोग तुम्हें क्या शिक्षा देंगे, तुम अपने गौराङ्गकी पवित्र कथाएँ सुनाकर हमारे जलते हुए प्राणोंको शीतल करो।'

इस प्रकार बाबाजी महाराज और व्रजनाथमें बातें होने लगीं। दूसरे-दूसरे वैष्णवजन वहाँसे उठ कर अपने-अपने सेवा कार्योंमें चले गए। अब वे केवल दोनों ही उस जगह रह गए।

व्रजनाथने कहा—'बाबाजी महाराज! हमलोग ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुए हैं, तिस पर भी विद्याका बड़ा अहंकार है। उच्च जाति और विद्याके अहंकारसे मत्त होकर पृथ्वीको गोस्पद तुल्य देखते हैं। साधु-संतोंका सम्मान करना नहीं जानते। कह नहीं सकता, किस सौभाग्यके फलसे आप लोगोंके चरित्र और आचारोंके प्रति मेरी कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई है। मैं आपसे दो एक बातें पूछना चाहता हूँ, कृपाकर इनका उत्तर प्रदान करेंगे। मैं निष्कपट होकर आपके पास आया हूँ। आप सबसे पहले मुझे जीवोंके साध्य और साधनका उपदेश करें। न्याय-शास्त्रका अध्ययन कर मैंने स्थिर किया है कि जीव ईश्वरसे नित्य

पृथक् है तथा ईश्वरकी कृपा ही जीवोंकी मुक्तिका कारण है। जिस उपासनाका अवलम्बन करनेसे ईश्वरकी कृपा प्राप्त होती है, उसे साधन कहते हैं। साधन द्वारा जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसे साध्य कहते हैं। मैंने न्यायशास्त्रसे अनेकों बार जिज्ञासा की है कि साध्य और साधन क्या हैं? परन्तु न्याय-शास्त्र इस विषयमें बिलकुल मौन रहता है—कोई उत्तर नहीं देता है। आप साध्य-साधनके सम्बन्धमें अपना सिद्धान्त बतलाने की कृपा करें।'

श्रीरघुनाथदास बाबाजी श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के शिष्य हैं तथा एक प्रकांड विद्वान एवं अनुभवी संत हैं। अनेक दिनों तक राधाकुण्डमें रहे हैं। वहाँ रहते समय प्रतिदिन तृतीय प्रहरके समय दास गोस्वामीके निकट श्रीचैतन्यदेवकी लीला-कथाएँ श्रवण करते। श्रीरघुनाथदास बाबाजी और कृष्णदास कविराज गोस्वामीमें परस्पर तत्त्वकी चर्चाएँ हुआ करतीं। जहाँ कहीं भी इनको संदेह होता, वे दास-गोस्वामीके निकट जिज्ञासा करके अपना संदेह दूर कर लेते। इस समय श्रीगौर-मण्डलमें श्रीरघुनाथ दास बाबाजी ही प्रधान विद्वान्-बाबाजी हैं। श्रीगोद्रुमके प्रेमदास परमहंस बाबाजीके साथ इनकी बड़े प्रेमसे हरि चर्चाएँ होतीं।

व्रजनाथका प्रश्न सुनकर रघुनाथ दास बाबाजी खूब आनन्दित होकर बोले—'न्याय पंचाननजी! न्यायशास्त्र पढ़कर जिसे साध्य-साधनके सम्बन्धमें जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वे जगत्में धन्य हैं। क्योंकि न्यायशास्त्रका प्रधान उद्देश्य ही है—न्याय-विषयोंका संग्रह करना। जिन लोगोंने न्याय-शास्त्रका अध्ययन करके केवल शुष्क तर्क करना ही सीखा है, उनका न्याय-पाठ व्यर्थ है। उनको परिश्रम ही सार हुआ। उनका जीवन व्यर्थ है।

साधन करने पर जिस तत्त्वकी प्राप्ति होती है, उसे 'साध्य' कहते हैं। उस साध्य वस्तुको पानेके लिये जो उपाय अवलम्बन किया जाता है, उसे साधन कहते हैं। मायामें फँसा हुआ जीव अपनी-अपनी प्रवृत्तियों और अपने-अपने अधिकारोंके अनुसार साध्य विषयको पृथक्-पृथक् रूपमें दर्शन करते हैं। वास्तवमें सारे जीवोंका साध्य-तत्त्व एक है।

प्रवृत्ति और अधिकारके अनुसार साध्य वस्तु तीन प्रकार की है—भुक्ति, मुक्ति और भक्ति। जो लोग सांसारिक कर्मोंमें फँसे हुए हैं और सांसारिक सुखोंकी कामनामें ही व्यस्त हैं, वे भुक्तिको अपना साध्य मानते हैं। शास्त्र कामधेनु हैं। जो मनुष्य जिस वस्तुको पानेकी कामना करता है वह शास्त्रोंसे वही पाता है। कर्म-काण्डीय शास्त्रमें कर्माधिकारी व्यक्तियोंके लिये भुक्तिको अर्थात् सांसारिक सुख-भोगको ही साध्य कहा गया है। प्रापञ्चिक जगत्में जितने प्रकारके भावी सुखोंकी कामनाकी जा सकती है, वे सभी कर्म-कांडीय शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं। इस संसारमें जीव प्रापञ्चिक शरीर धारणकर इन्द्रिय सुखों को ही विशेष आदर करता है। जड़ जगत् प्राकृत इन्द्रियोंके सुख-भोगके लिए ही बनाया गया है। जन्मसे लेकर मृत्यु तक इन्द्रियों द्वारा विषय-सुखोंको भोग करने का 'ऐहिक-सुख' है। मृत्युके बादकी अवस्थामें इन्द्रिय सुखके भोगको 'आमुत्रिक सुख' कहते हैं। आमुत्रिक सुख अनेक प्रकारके होते हैं। स्वर्ग और इन्द्रलोकमें अप्सराओंका नृत्य दर्शन, अमृत भोजन, नन्दन-काननमें सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंका सुगन्ध लेना, इन्द्रपुरी और नन्दन-काननकी शोभा देखना, गन्धर्वोंका गान सुनना, और विद्याधरियोंके साथ संगम—इनको स्वर्गीय सुख कहते हैं। इसी प्रकार मह और जन लोकमें भी कुछ अल्प परिमाणमें सुख है। तप लोक और ब्रह्मलोकमें किंचित परिमाणमें इन्द्रिय सुखोंका वर्णन किया गया है। भूलोक (पृथ्वी) में इन्द्रिय सुख अत्यन्त स्थूल होते हैं। ऊपरके लोकोंमें इन्द्रियाँ और उनके विषयसमूह क्रमशः सूक्ष्म होते जाते हैं। इन सारे लोकोंमें पाये जानेवाले सारे सुख ही इन्द्रिय-सुख हैं। वहाँ चित् सुख नहीं है। बल्कि चिदाभास अर्थात् लिंग-शरीर (सूक्ष्म शरीर) द्वारा भोगे

जानेवाले सुखही इन लोकोंमें विद्यमान होते हैं। इन सब सुखोंके भोगका नाम ही भुक्ति है। कर्मचक्रमें फँसे हुए जीव-समूह मुक्ति प्राप्त करनेकी आशासे उपाय स्वरूप जिस कर्मका आश्रय करते हैं, उसे ही वे साधन कहते हैं। "स्वर्गकामोऽश्वमेधं यजेत" (यजुः—२।५।५) (क) 'अग्निष्टोम', विश्वदेव-बलि', 'इष्टापूर्त्त', 'दर्श-पौर्णमासी' आदि अनेक प्रकारके भुक्तिके साधन शास्त्रोंमें निरूपित किये गये हैं। भोग-प्रवृत्तिवाले पुरुषोंके लिए भुक्ति ही साध्य वस्तु है।

कुछ लोग संसारमें तरह-तरहके दुःख-क्लेशोंसे तंग आकर प्रापंचिक सुखोंके (चौदहों लोकोंमें पाये) जाने वाले सुखोंको) तुच्छ समझकर कर्म-चक्रसे बाहर होनेकी कामना करते हैं। इनके विचारसे मुक्ति ही एकमात्र साध्य-वस्तु है। वे लोग भुक्तिको बन्धन समझते हैं। इनका कहना है—"जिन लोगों की भोग-प्रवृत्ति दूर नहीं हुई है, वे लोग कर्म-काण्ड का आश्रय करें अर्थात् कर्ममार्गको अपना साधन मानें, भुक्तिरूप साध्यको प्राप्त करनेका प्रयत्न करें और प्राप्त भी करलें, परन्तु 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' (गीता ९।२१)—इस श्लोकसे यह निश्चित रूपमें जाना जाता है कि भुक्ति कदापि नित्य नहीं होती अर्थात् अनित्य होती है। अनित्य अथवा क्षयिष्णु वस्तु—प्रापंचिक होती हैं—आध्यात्मिक नहीं। नित्य-वस्तुकी प्राप्तिके लिये ही साधन करना कर्त्तव्य है। मुक्ति नित्य होती है। अतएव जीवोंके लिये वही साध्य है। उसे वैराग्यादि साधन-चतुष्टयों से पाया जा सकता है। अतएव साधन-चतुष्टय ही यथार्थ साधन हैं।" ज्ञान-काण्डीय शास्त्रोंमें साध्य-साधनका ऐसा ही विचार देखा जाता है।

शास्त्र—कामधेनु हैं। जीव जब जैसा अधिकार प्राप्त करता है, शास्त्र उस जीवके लिए उसके अधिकारके उपयोगी वैसी ही व्यवस्था देते हैं। यदि मुक्ति होने पर भी जीवकी सत्ता विद्यमान रहे तो ऐसी अवस्थामें मुक्ति ही चरम साध्य नहीं है। इसीलिए वे निर्वाण तक मुक्तिकी सीमा रखते हैं। वास्तव में जीव नित्य है, अतः जीवोंके सम्बन्धमें वैसा निर्वाण सम्पूर्ण असंभव है। "नित्यो-नित्यानां चेतन-श्चेतनानाम् " (श्वे० उ० ६।१३) आदि वेदमंत्रोंद्वारा जीवोंकी नित्यता स्वीकृत है। नित्य-वस्तुकी निर्वाण-गति असम्भव है। मुक्त होने पर भी जीवोंकी सत्ता अवश्य विद्यमान रहती है। जो लोग ऐसा विश्वास करते हैं, वे भुक्ति और मुक्तिको चरम साध्य नहीं मानते। मुक्ति और भुक्ति—ये दोनों आवान्तर साध्य वस्तु हैं। समस्त कार्योंमें ही साध्य और साधन हैं। जिस कार्यको उद्देश्य किया जाता है, उसे साध्य कहते हैं और जिस कार्यके द्वारा साध्य साधित होता है, उसे साधन कहते हैं। विचारपूर्वक देखने पर साध्य और साधन जीवोंके लिए एक शृंखलमय तत्त्व हैं। अभी जो साध्य है, पीछे वही अगले साध्यके लिये साधन होता है। इस प्रकार साध्य-साधन रूप शृंखलका अवलम्बन कर इस शृंखलके अंतिम छोरपर जो साध्य प्राप्त होता है, वही अंतिम और सर्वश्रेष्ठ साध्य है। वह पुनः साधन नहीं होता। क्योंकि उसके आगे और कोई भी साध्य तत्त्व नहीं है। इसलिए भक्ति ही चारम साध्य है। क्योंकि भक्ति ही जीवोंका नित्य-सिद्ध-भाव है।

मानव-जीवनका प्रत्येक कार्य साध्य-साधन रूप शृंखलकी एक कड़ी है। ऐसी-ऐसी बहुतसी कड़ियाँ मिलकर क्रमशः कर्म विभाग का निर्माण करती हैं। फिर उससे आगे बहुतसी कड़ियाँ मिलकर ज्ञानरूप विभागका निर्माण करती हैं। कर्म-विभागका अंतिम उद्देश्य—भुक्ति है। ज्ञान-विभागका अन्तिम लक्ष—मुक्ति है और भक्ति-विभागका चरम उद्देश्य—प्रेम-भक्ति है। जीवोंकी सिद्ध सत्ताका विवेचन करने पर ऐसा दृढ़ निश्चय होता है कि भक्ति ही साधन है तथा भक्ति ही साध्य है। कर्म और ज्ञान अन्तिम साध्य और साधन नहीं हैं।

(क्रमशः)

(क) स्वर्गकी अभिलाषा करनेवाले अश्वमेध यज्ञ करेंगे।